Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

* ओ३म् *

प्रश्नोपनिषद्

का

प्रश्नोत्तर की रीति से व्याख्या सहित
हिन्दी अनुवाद ।

अनुवादक—

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी

न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन,
वेदान्त दर्शन और उपनिषद् आदि और छोटे२
सैंकड़ों ट्रैक्ट आदि पुस्तकों के लेखक ।

प्रकाशक—

वज़ीरचन्द्र शर्मा—अध्यक्ष

वैदिक पुस्तकालय मोहनलाल रोड, लाहौर ।

आर्य्य सम्वत् १९७२९४९०३१ दया० १०७
सम्वत् १९८८ वि० अक्तूबर सन् १९३१

मैनेजर शरत्चन्द्र लखनपाल के प्रबन्ध से
बाम्बे मैशीन प्रेस मोहनलाल रोड लाहौर में छपा ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

* ओ३म् *

प्रश्नोपनिषद्

का

प्रश्नोत्तर की रीति से व्याख्या सहित
हिन्दी अनुवाद ।

अनुवादक—

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी

न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन,
वेदान्त दर्शन और उपनिषद् आदि और छोटे२
सैंकड़ों ट्रैक्ट आदि पुस्तकों के लेखक ।

प्रकाशक—

वज़ीरचन्द्र शर्मा—अध्यक्ष

वैदिक पुस्तकालय मोहनलाल रोड, लाहौर ।

आर्य्य सम्वत् १९७२९४९०३१ दया० १०७
सम्वत् १९८८ वि० अक्तूबर सन् १९३१

मैनेजर शरत्चन्द्र लखनपाल के प्रबन्ध से
बाम्बे मैशीन प्रेस मोहनलाल रोड लाहौर में छपा ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

* ओ३म् *

प्रश्नोपनिषद्

का

हिन्दी अनुवाद

मन्त्र—ओं सुकेशा च भारद्वाजः शैव्यश्च सत्यकामः सौर्य्यायणी च गार्ग्यः कौशल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्तेहैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १ ॥

शब्दार्थ—सुकेशा = यह नाम है। च = और। भारद्वाजः = भारद्वाज ऋषि की सन्तान में। शैव्यः = शैव्य की सन्तान में सदा होने वाली। सत्यकामः = सत्य का नाम है। सौर्य्यायणी = सूर्य की सन्तान में से। च = और गार्ग्यः = गर्ग ऋषि की सन्तान। कौशिल्या = कौशिल्या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नाम । च = और । आश्वलायनः = आश्वल ऋषि का पुत्र । भार्गवः = भार्गव ऋषि की सन्तान में । वैदर्भिः = विदुरभी नाम वाले का पुत्र । कात्यायनः = कथ ऋषि का बेटा । कबंधी = कबंधी नाम । तेह = यह प्रसिद्ध तप करने वाले । एते = यह पुरुष । ब्रह्मपरा = ब्रह्म के भक्त । ब्रह्मनिष्ठा = ब्रह्म की प्राप्ति में लगे हुए । परम् = इंद्रियों से परे । ब्रह्म = सर्वव्यापक परमात्मा को । अन्वेषमाणा = खोज करते हुए । एष = प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानी गुरु । वै = निश्चय पूर्वक । तत्सर्वम् = सब के भीतर रहने वाले आत्मा के उपदेश को प्राप्त करने के विचार से । वक्ष्यतो = उपदेश के योग्य समझ कर । समित्पाणयो = हाथ में अग्निहोत्र की लकड़ियां लिए हुए । ते = वह ऋषि लोग । भगवन्तं = पूजने योग्य आचार्य । पिप्पलादम् = पिप्पलाद नामी ऋषि के पास उपदेश ग्रहण करने को । मुपसन्नाः = पधारे ।

अर्थ—श्रुति और स्मृति ने निर्णय कर दिया है कि जिस अधिकारी को ब्रह्म जानने की उत्कंठा हो, वह ब्रह्मज्ञाता गुरु के समीप जाकर उपदेश ग्रहण करे । परन्तु ब्रह्मज्ञानी गुरु के समीप भेंट लेजाना योग्य है । क्योंकि महानुभाव महात्माओं के समीप बिना भेंट जाना, उनका अनादर करना है । और ब्रह्मज्ञानी के समीप कोई बहुमूल्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वस्तु लेकर जाना भी उनका अपमान करना है । क्योंकि ब्रह्मज्ञानी को किसी वस्तु की अभिलाषा कदापि नहीं होती। अतएव, ऋषियों ने समिधा अर्थात् हवन करने की लकड़ियां हाथ में लेजाने का नियम नियत किया था । जिसके अर्थ यह थे कि मैं तप इत्यादि यज्ञ करके निज अन्तःकरण को शुद्ध करके और बाहर के आडम्बरों को त्याग कर केवल ब्रह्मज्ञान का जिज्ञासु होकर आया हूं। जब तक इस प्रकार की जिज्ञासा और ब्रह्मज्ञान की भक्ति, चित में उत्पन्न न हो, जब तक वह ब्रह्मज्ञान का अधिकारी नहीं। संसार के सब पदार्थ समिधाओं की भांति ब्रह्मज्ञान की अग्नि में भस्म कर के, हम उसको जान सकते हैं । संसार के पदार्थ जीव से बाहर हैं और ब्रह्म का दर्शन जीव के भीतर होता है, इस कारण एक ही समय में जीव भीतर बाहर देख नहीं सकता । अतः जो मनुष्य, संसारी वासनाओं में लिप्त हैं, जो मनुष्य, विषय-भोग में लवलीन हैं, जिनको यश, प्रतिष्ठा और शासन की वासना जकड़े हुए हैं, वह ब्रह्मज्ञान के मार्ग पर जाने योग्य नहीं । इस मार्ग पर वह मनुष्य पहुँच सकते हैं। जो प्रत्येक बाह्य बन्धन से स्वतन्त्र हों, जिनको बाह्य अभिलाषा कुछ भी न हो ।

मन्त्र—तान् ह स ऋषिरुवाच—भूय एव तपसा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रह्मचर्येण श्रद्धयासंवत्सरं संवत्स्यथ, यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ, यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम् इति ॥ २ ॥

शब्दार्थ—तान्=उनको। ऋषिरुवाच=ऋषि ने कहा भूयएव=तुम दो बार। तपस्या=तप करते हुए। ब्रह्मचर्येण=ब्रह्मचारी होकर। श्रद्धया=श्रद्धा से। संवत्सरं=एक वर्ष तक। संवत्स्यथ=मेरे समीप रहो फिर। यथाकामम्=यथा कामना। प्रश्नान्=प्रश्नों को। प्रच्छतु=पूछो। यदि=यदि। विज्ञास्यामः=मैं जानता होऊँगा। सर्वं ह=तो सभी। वो=तुम्हारे लिये। वक्ष्यामः=कहूँगा अर्थात उपदेश करूंगा।

अर्थ—उनको जब तपस्वी के तप को जानते हुए भी पिप्पलाद ऋषि ने परीक्षार्थ एक वर्ष तक उन को तप और ब्रह्मचारी हो कर अपने समीप रहने का आदेश किया। और कहा, इतना तप करने के पश्चात्, जिस प्रकार के प्रश्न करने की इच्छा हो करना। यदि मैं जानता होऊँगा, तो तुमको ठीक बता दूंगा। इस कथा से क्या परिणाम निकलता है? जो लोग तप और ब्रह्मचर्य्याश्रम से शून्य हैं, वह ब्रह्मविद्या जाननेके अधिकारी नहीं। वर्तमान समय में जो मनुष्य अनधिकारी हो कर ब्रह्मविद्या के ग्रन्थों को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पढ़ते और ब्रह्मज्ञान के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं, उस से व्यर्थ समय नष्ट होने के अतिरिक्त और कोई फल नहीं निकलता। जिस प्रकार बिना जोती हुई भूमि में जिस में कभी हल न चलाया गया हो, जो बीज बोया जाता है, वह कभी फल नहीं लाता। इसी प्रकार जिस ने ब्रह्मचर्य और तप न किया हो, उस को ब्रह्मविद्या के उपदेश से कोई लाभ नहीं होता। ऋषि लोग सत्य कथन करते हैं, यदि मुझे आता होगा, तब मैं तुमको सब बता दूंगा। जिससे स्पष्ट प्रकट है कि वह आजकल के अविद्वान् मनुष्यों की भांति सर्वज्ञ होने का मिथ्या पक्ष लेने के प्रकृति वाले नहीं थे; किन्तु प्रत्येक पक्ष करने के साथ निज-शक्ति का भी विचार रखते थे। ऋषि स्पष्ट शब्दों में कहता है कि मैं सर्वज्ञ नहीं हूं, परन्तु उन के चित्त की वृत्ति को जानता हुआ कि यह ब्रह्मविद्या के उपदेश को आये हैं। कहता है कि तुमको जो इच्छा है, उस के सम्बन्ध में जो प्रश्न करोगे, उस को मैं अपने ज्ञानानुकूल बताऊंगा। यह सत्यता का सर्वोत्तम समय था, जब कि मिथ्या अभिमान से समय शून्य था। जब तक मनुष्यों में सत्यता न हो, तब तक धर्म के कार्य यथावत् नहीं चल सकते। और जब तक धर्म प्रत्येक के साथ न हो, तब तक सफलता से सुख और शांति का मुख देखना दुस्तर है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंत्र—अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ। कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—अथ=एक वर्ष बीत जाने के पश्चात्। कबन्धी=कबन्धी नाम। कात्यायनः=जो कथ ऋषि के कुल में उत्पन्न हुआ था। उपेत्य=पिप्पलाद ऋषि के समीप आकर। पप्रच्छ=पूछता है। भगवान्=हे गुरु महाराज। कुतः=कहां से या किससे। ह वा=पूर्व सृष्टि की उत्पत्ति को ध्यान-पूर्वक कहिये। इमाः=यह जो प्रत्यक्ष दीखता है। प्रजा=मनुष्य पशु आदि जीव जन्तु और निर्जीव। प्रजायन्त=उत्पन्न हुए हैं।

अर्थ—यहां प्रश्न यह किया कि यह प्रत्यक्ष देखने योग्य सृष्टि का कर्ता कौन है। क्योंकि जो वस्तु को ज्ञानानुकूल बनाता है, वही उसकी अवस्था को जानता है। और जो उसकी अवस्था ठीक प्रकार जानता है, वही उस को ठीक सुधार सकता है। अतएव, संसार के सुधार के लिये, संसार के निर्माण-कर्ता का जानना अवश्य है। जो सृष्टि के रचियता को नहीं जानता, वह संसार का सुधार नहीं कर सकता। क्योंकि जब तक यह न मालूम हो कि निर्माण-कर्ता ने इसको किस अर्थ से बनाया है, तब तक उस वस्तु से ठीक काम नहीं लिया जाता। क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निर्माण-कर्ता के आशय के अनुकूल काम लेना ही ठीक कार्य्य कहला सकता है; और उस के विरुद्ध कार्य करना उस को हानि पहुंचाना है। यथा हम जानते हैं कि नेत्र परमेश्वर ने मार्ग देखकर चलने को दिये हैं। यदि हम नेत्र बन्द करके चलते हैं, तो नेत्र निर्माण-कर्ता के सिद्धांत के विरुद्ध काम करते हैं, जिससे ठोकर खाकर कष्ट सहन करते हैं। यहां प्रजा से वास्तविक तात्पर्य्य शरीर तथा इन्द्रियों का है। यदि हम को विदित हो जावे कि यह शरीर और इंद्रियां किस ने किस अर्थ से निर्माण की हैं, तो हम इस शरीर से उचित लाभ उठा कर सन्मार्ग पर पहुंच जाते हैं। यदि न मालूम हो कि कर्ता कौन है और उसका अर्थ बनाने से क्या है, तो मार्ग पर पहुंचना असम्भव होता है। अतएव, ऋषियों ने सब से प्रथम प्रश्न यही करना उचित समझा कि इस जगत का कर्ता कौन है। ऋषि उत्तर देते हैं।

मन्त्र—तस्मै स होवाच-प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिञ्च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति॥ ४॥

शब्दार्थ—तस्मै=उस कात्यायन। सह=वह पिप्पलाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऋषि । होवाच=स्पष्ट कहने लगे । वै=जब । प्रजा कामः= प्रजा के अर्थ से । प्रजापतिः=सब जीवों का नित्य राजा जो परमात्मा है सः=उसने । तप=क्रिया देनेवाली शक्ति से । उत्पत्ति=क्रिया अर्थात् हरकत दी । सः=उस ने । तपस्तप्त्वा=हरकत देकर । मैथुनम्=दो प्रकार की जोड़ी को । उत्पादयते=उत्पन्न क्रिया । रयिंत=एक तो भोगने योग्य जड़ से । प्राणंच=दूसरा भोगने वाला प्राण । इत्यतो= यह दोनों भोगने योग्य और भोगने वाले । मे=मेरे । बहुधा=बहु प्रकार की । प्रजा=जीवों के शरीरों को । करिष्यत्=करेंगे । इति=समाप्ति का शब्द ।

अर्थ—जब न्यायकारी और दयालु परमात्मा ने अपनी जीव रूप अनादि प्रजा के आनंदार्थ अपने स्वाभाविक न्याय और दया से जगत् बनाने के अर्थ प्रकृति जो उस की अनादि-कालसे सम्पत्ति है, उसको क्रिया (हरकत) देकर दो प्रकार का बनाया । एक तो जीव-संगति चेतन्य-सृष्टि जो विशेष प्राणों के साथ तीन प्रकार की शक्ति रखती है, अर्थात् करने न करने और उलटा करने से जिसमें कि इच्छा रखने वाली चेतनता प्रकाश हो सके । दूसरे जीवों से रहित भोगने के योग्य विशेष प्राणों से पृथक् जड़-सृष्टि जिसको चेतन्य-सृष्टि भोग करती है, जिसमें चेतनता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं, किंतु प्रबन्धक चैतन्य है। इस दो प्रकार की सृष्टि से ही परमात्मा की प्रजा (जीव) बहुत प्रकार के फल कर्मों के अनुकूल भोग सकते हैं। जिनमें इच्छा रखने वाली चैतन्य और विशेष प्राण हैं, वह भोगने वाली सृष्टि है, जिसको चैतन्य-सृष्टि कहते हैं। जिससे मनुष्य चतुष्पद, पखेरू कृमि इत्यादि जीवधारी, अन्य जो भोगार्थ बने हैं, यथा बनस्पति, मिट्टी इत्यादि इन दो प्रकार की सृष्टि के नाम जड़ और चैतन्य, स्थावर, जंगम, चराचर भोगता, भोग्य इत्यादि हैं। इस जोड़ी से ही यह सम्पूर्ण जगत् भरा हुआ है, कहीं चैतन्य हैं, कहीं जड़, निदान प्रजापति परमात्मा ने ही इसको उत्पन्न किया है और उसी के नियम में यह कार्य्य कर रहे हैं। इसके नियम के विरुद्ध होना अर्थात् चैतन्य का जड़ हो जाना और जड़ का चैतन्य होना असम्भव है।

प्रश्न—अन्य मनुष्य तो इसका पदार्थ यह करते हैं, कि प्रजा की इच्छा से परमात्मा ने यह जगत् बनाया है।

उत्तर—परमात्मा में यह इच्छा हो नहीं सकती, क्योंकि इच्छा प्राप्त इष्ट व लाभदायक की होती है। लाभ-दायक वह वस्तु होती है, जो न्यूनता को पूर्ण करे या दोष को दूर करे। परमात्मा में न न्यूनता है, न दोष है,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फिर इच्छा किस प्रकार हो सकती है। दूसरे इच्छा से जगत की उत्पत्ति मानने में लगातार दोष लगता है, क्योंकि जिस वस्तु की उत्पन्न करने की इच्छा हो, तो उसका लाभदायक और प्राप्त होना अवश्य है। लाभदायक होने के ज्ञान के वास्ते उस वस्तु का होना आवश्यक है। जब वह वस्तु उपस्थित है, तो उत्पन्न करने का विचार किस प्रकार होगा। और वह वस्तु भी उत्पन्न होने की इच्छा से उत्पन्न हुई होगी, जिसके लिये फिर वही क्रम का चक्र लगा रहेगा।

प्रश्न—इस का क्या प्रमाण है कि जीवों के हेतु सृष्टि परमात्मा ने रची।

उत्तर—प्रजापति शब्द ही बताता है कि परमात्मा उत्पन्न करनेसे पूर्व भी प्रजापति था। और जो अतिरिक्त जीवरूप प्रजा के और हो नहीं सकता।

प्रश्न—यदि यह मान लिया जावे कि प्रजापति नाम परमात्मा का उत्पन्न करने के पश्चात् हुआ।

उत्तर—परमात्मा का कोई गुण जिसके पश्चात् नाम रक्खा जावे, हो नहीं सकता, क्योंकि उसके सब गुण कर्म स्वाभाविक हैं। अब इस की व्याख्या करते हैं।

मन्त्र—आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमाः रयिर्वा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एतत्सर्वं यन्मूर्तञ्चामूर्तञ्च तस्मान्मूर्त्तिरेव रयिः॥५॥

शब्दार्थ—आदित्यः=सूर्य जो सब वस्तुओं का विनाश करता है। रयि=स्पष्ट। प्राणः=प्राण है अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों का भोगने वाला है। रयि=भोगने योग्य। एव=ही। चन्द्रमा=चन्द्रमा है। रयि=और भोगने। एव=अथवा। एतत् सर्वम्=यह सब जगत्। यत्=जो। मूर्त्तम्=मूर्त्ति वाला है। अमूर्तंच=मूर्त्ति से रहित अवस्था है। च=और। तस्मात=इस कारण से। मूर्त्ति=मूर्त्ति अर्थात ठोस वस्तु। एव=ही। रयि=भोगने योग्य वस्तु है।

अर्थ—संसार के जड़ पदार्थों में विनाश और न्यूनता को देखा जाता है, उसको भोगने वाला प्राण सूर्य है। जिसके कारण से प्रत्येक पदार्थ प्राण होकर नाश होता है। सूर्य प्रत्येक वस्तु के भीतर से पानी को किरणों से खींच कर भोगता है, जिस से पदार्थ नाश होते हैं। और जिस को भोगता है, वह चंद्रमा है, अर्थात् जल का मुख्य भाग है। कारण यह है कि उष्णता जो सूर्य की है, वह भोगने वाली है। और शीतलता जो चन्द्रमा की है, वह भोग्य है, जिसको गरमी भोगती है अथवा जितने मूर्त्तिमान् द्रव्य हैं। मूर्त्ती का लक्षण यह है कि जिस के खण्ड मूर्छित अर्थात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञान से शून्य हों और वह संयोगावस्था में हो । अतः ठोस वस्तुएं मूर्त्ति वाली और द्रव और गैस वाली अमूर्त्ति में । यह सब भोगने योग्य पदार्थ हैं और इनको भोगने वाला आदित्य (सूर्य प्राण) है ।

प्रश्न—सूर्य को प्राण अर्थात् भोगने वाला क्यों कहा क्योंकि वह भी तो अग्नि का बना हुआ शरीर है ।

उत्तर—सूर्य से वर्षा होती है और वर्षा से सब प्रकार की वनस्पति अर्थात् अन्न इत्यादि उत्पन्न होते हैं और सूर्य की किरणें वायु के साथ मिल कर प्राण उत्पन्न करती हैं, जिस से क्षुधा, तृषा, मालूम होती है । निदान, भोक्ता सूर्य ही है, चेतन्य जीवात्मा तो केवल भोग का ही भागी होता है, अब उसकी व्याख्या करते हैं ।

मन्त्र—अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति, तेन प्राच्यान्प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते । यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधोयदूर्ध्वं यदन्तरादिशो यत्सर्वं प्रकाशयति, तेन सर्वान्प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—अथ=भोगने वाली शक्ति का व्याख्यान करते हैं, रात्रि के विनाश होने पर । आदित्य = सूर्य । यत् = जिस कारण से । प्राचीं = पूर्व दिशा । उपयन =

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उदय होता । दिशम् = दिशा को । प्रविशति = प्रवेश करता तेन = उस से । प्राच्यां = पूर्वी भाग में । प्राणान् = प्राणों को । रश्मिषु = किरणों में । सन्निधत्ते = मिलता है । यत् दक्षिणाम् = जिस से दक्षिण दिशा में । यत्प्रतीचीम् = जिस से पश्चिम में । यत् उदीचीम्=जिस से उत्तर में । यदधः=जिस से नीचे । यत् ऊर्ध्वम्=और जिस से ऊपर यत् अन्तरादिशा=जिस से मध्य कोणों में । यत्=जिससे सर्वम्=सब को । प्रकाशयति=प्रकाश करता है । तेन=उस से । सर्वान् प्राणान्=सब प्राणों को । रश्मिषु=किरणों में सन्निधत्ते=स्थापित करता है ।

अर्थ—यहां पर भोगने वाली शक्ति का व्याख्यान करते हैं कि जब रात्रि के व्यतीत होने पर सूर्य पूर्व में उदय होता है, तो उस ओर की किरणों से प्रत्येक वस्तु के भीतर वायु से अग्नि संयोग करके प्राणों को स्थापित करता है । अर्थात क्रिया (हरकत) देने की शक्ति सूर्य की किरणों में है । जिस प्रकार इञ्जन में वायु पहले विद्यमान होती है, जिस समय पानी और आग के द्वारा भाप बन कर स्टीम बन जाता है, तो इञ्जन को हरकत दे सकता है; जिससे सम्पूर्ण काम चल जाते हैं । प्रत्येक वस्तु को पृथिवी का आकर्षण अपनी ओर खींचता है, जिससे कोई वस्तु पृथिवी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से पृथक् नहीं हो सकती। परन्तु पृथिवी की विपरीत सतोगुण शक्ति अग्नि की है, जो नित्य पृथिवी के विरुद्ध चलती है। क्योंकि उसका भण्डार सूर्य पृथिवी से विपरीत दिशा में रहता है। इस कारण अग्नि प्रत्येक वस्तु को अपने भण्डार (सूर्य) की ओर ले जाना चाहता है। इस कारण अग्नि और पृथिवी में हर समय संग्राम लगा रहता है। यदि भूमि की शक्ति अग्नि से अधिक हो तो वस्तु पृथिवी से पृथक् न हो सके। यदि अग्नि की शक्ति पृथिवी से अधिक हो तो वस्तुएँ सीधी ऊपर को चली जावें। अतः सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमात्मा ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि शक्ति तो अग्नि में पृथिवी से अधिक है, जिस से वह प्रत्येक वस्तु को पृथिवी से पृथक् कर लेती है। परन्तु पृथिवी की सहायता के लिये जल को नियत कर दिया है कि वह पृथिवी की सहायता कर के वस्तुओं को पृथिवी से पृथक् न होने दे। अतः जब पांव पृथिवी से उठ जाता है तो झट पानी पड़ कर अग्नि की शक्ति को निर्बल कर देता है। जिस से वस्तु पृथिवी पर फिर आ जाती है। अग्नि इस पानी को विनाश करके फिर वस्तु को उठाती है, फिर और जल आकर उसको निर्बल कर के रोक देता है। इस प्रकार यह पदार्थ न तो पृथिवी के साथ ही चिपटे रहते हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और न सूर्य की ओर जाने पाते हैं, अतः वायु उनको हरकत देकर पृथिवी के साथ साथ चलाती है। इस उपचार से पानी बराबर स्टीम बन कर उड़ जाता है । अब यह शक्ति प्राण-शक्ति कहलाती है कि जो सूर्य की किरणों से उत्पन्न होकर सब जगत् को भोग रही है। इस कारण वेदांत के विद्वान् मानते हैं कि क्षुधा और तृषा प्राणों का धर्म है, अर्थात् प्राण हर समय भोजन और जल के अवयवों को भीतर से निकालते रहते हैं। जब तक प्राणों का प्रभाव भोजन पर पड़ा रहता है, तब तक कोई कष्ट मालूम नहीं होता। परन्तु जब तक प्राण भीतर के निकलने वाले भोजन को और जल को समाप्त करके शरीर के अवयवों में जो खाना और पानी मिला हुआ है, उस पर प्रभाव डालना आरम्भ करते हैं, तो पानी पर प्रभाव डालने का नाम तृषा है। और खुराक पर प्रभाव डालने का नाम भूक है अर्थात् जो कुछ हमारे शरीर में या ब्रह्मांड में भोगा जा रहा है, वह सूर्य ही भोग रहा है। यह क्रिया (हरकत) प्रत्येक दिशा और कोण में सूर्य की किरणों से ही स्थित होती है यदि सूर्य की किरणों से फैली हुई अग्नि जो प्राण बनाती है, विद्यमान न हो, तो सब जीव जन्तु मर जावें। शुष्क पृथिवी में जो वायु चलती है, उसको अग्नि के परमाणु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अधिक मिलते हैं, इस कारण वह मनुष्यों को अधिक आरोग्यदायक होती है। जो भूमि नम है, वहां की वायु को अग्नि के परमाणु कम मिलते हैं। अतः वह आरोग्यता के लिये हानिकारक है। निदान, प्रत्येक वस्तु को कितनी प्राणों की आवश्यकता है, यदि उतने प्राण मिल जावें; तो वह भले प्रकार उन्नति करते हैं। जहां प्राणों की शक्ति निर्बल मिली, वह बिगड़ जाती है। यदि भूमि गीली है, तो अग्नि कम मिलने से प्राण ठीक काम नहीं कर सकते, जिस से मनुष्य की आरोग्यता बिगड़ जाती है। यदि पीने को जल न मिले, तो सूर्य की किरणें पृथिवी से शक्ति युक्त होकर शरीर के अवयवों को फैला देती हैं, जिस से वस्तु विनाश हो जाती है। इस की और भी व्याख्या करते हैं।

मन्त्र—स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुद्यते। तदेतदृचाभ्युक्तम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—सः=वह सूर्य जिसका वर्णन आ चुका है। एष=जो प्रत्यक्षनेत्र से दीखता है। वैश्वानरः=सम्पूर्ण संसार के प्राणों को चलाने वाला। विश्वरूपः=सब जगत में भोग करने वाली शक्ति रूप से प्रकाशित। प्राणः=जिस का नाम प्राण जो अन्न आदि उत्पन्न करता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अग्निः=गरमी को। उदयतः=प्रकट करता है। तत्=उस को। इतत्=यह। ऋचाभ्युक्तम्=ऋग्वेद के मन्त्र में भी कहा है।

अर्थ—यह सूर्य जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है, उस की किरणों से जो अग्नि फैल कर जगत में प्राण-शक्ति उत्पन्न करके अन्न को बढ़ाती और दूसरे जीव जन्तुओं को उत्पन्न करती और नियम में जलाती है। इस कारण चराचर जगत्के शरीरों में जो क्रिया (हरकत) हो रही है, सब उसी सूर्य की है, जो जगत् मात्र का प्राण है। अतः जगत् में प्राण-शक्ति दो प्रकार से काम करती है। एक तो सामान्य, जिस के द्वारा ६ विकार होते हैं, उत्पन्न होना, बढ़ना, एक सीमा तक बढ़कर रुक जाना, आकृति बदलना, घटना, नाश। इन षट् विकारों का कारण सामान्य प्राण अर्थात् सूर्य की किरणों से उत्पन्न होने वाली सामान्य हरकत (प्राण) हैं। और जान वाले में जहां विशेष प्राण अर्थात करने न करने और उलटा आदि करने की शक्ति पाई जाती है, उसमें प्राणों के अतिरिक्त जीवात्मा भी होता है, जो उन प्राणों को अपनी इच्छानुकूल चलाता है। बढ़ना आदि काम जो प्राणों के हैं, वह सामान्य और विशेष प्राण दोनों में समान पाये जाते हैं। परन्तु विशेष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राण वहां होंगे। और सामान्य प्राण वहां होंगे, जहां केवल प्राण होंगे। वास्तव में प्राणों से प्रेरणा (हरकत) होती है। प्राण ही खाते पीते हैं, जीव तो केवल नियम में चलाता है, यथा इंजन में ड्रायवर। यह हर दो प्रकार के चाहे विशेष प्राण से हों, या सामान्य प्राण से, सूर्य की किरणों से उत्पन्न हुए प्राण ही करते हैं। बढ़ना-घटना आदि सब काम प्राणों से होते हैं। जीव का इन से कोई सम्बन्ध नहीं। प्राण परमात्मा के नियम से जो उस ने सूर्य वालों आदि में नियत कर दिया है, अपना काम कर रहे हैं। निदान, प्राण ही जगत को भोगने वाला है।

मंत्र—विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्। सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥ ८॥

शब्दार्थ—विश्वरूपं=समस्त भोगने वाली शक्ति रूप। हरिणं=किरण वाला। जातवेदसं=जिससे वेद अर्थात ज्ञान उत्पन्न होता है। परायणं=जो सब प्राणियों में रहता है। तपन्तम्=जो भले प्रकार गरम हो रहा है। ज्योतिः=प्रकाशक सूर्य। एकम्=जो इस लोक में एक है। सहस्ररश्मिः=जिसकी अनन्त किरणें हैं। शतधा=सौ प्रकार से। वर्तमानः=काम करती हुई विद्यमान रहने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाली। प्राणः=जीवन का कारण। प्रजानाम्=सब प्राणियों। उत्पत्तिः=प्रकाश करता है। एष=यह सूर्यः=सूर्य।

अर्थ—जो सूर्य है, जिसकी आभास अनन्त है, जो सैकड़ों प्रकार की वर्तमान प्रजाओं का प्राण होकर उनको जीवन दे रहा है। जो सब जगत् के भीतर काम करता हुआ और किरणों वाला है। जो रूप जिससे पदार्थों का ज्ञान नेत्रों को होता है, उसको उत्पन्न करने वाला और प्रत्येक प्राणी में एक ही ज्योति या प्रकाश से विद्यमान और तप रहा है, इन सबका कारण है। इससे स्पष्ट विदित हो गया कि जगत् में जो क्रिया (हरकत) हो रही है, उसका कारण सूर्य है। अब भोग्य कृत की व्याख्या करते हैं।

मन्त्र—संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरञ्च। तद्ये ह वै तादिष्टापूर्त्ते कृतमित्युपासते। ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते। त एव पुनराव-र्त्तन्ते, तस्मादेते ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिप-द्यन्ते। एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः॥ ९॥

शब्दार्थ—संवत्सरः=वर्ष। वै=निश्चय। प्रजापतिः= जगत् की रक्षा करने वाला है, प्रत्येक वस्तु की रक्षा समय पर होती है। तस्य=उस वर्ष के। आयेन=उस वर्ष के वास-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्थान में घर है। दक्षिणं=एक दक्षिणायन जब सूर्य दक्षिण की ओर जाने लगता है। च=और । उत्तरम् च=दूसरे उत्तरायन जब सूर्य उत्तर की ओर जाने लगता है। तत्र= उन में। इह वै=जो मनुष्य निश्चय करके। इष्टपूर्ति=वेदानुकूल यज्ञ, बावली, कूप, सर आदि लगाने। कृतम्=उनके फल की इच्छा रखते हुए। उपासते=करते हैं। ते=वह लोग। चान्द्र सम=भोग शक्ति प्रधान। एव=है। लोकम्= शरीर को। अभिजयन्ते=विजय करते अर्थात् प्राप्त करते हैं। ते=वह। एव=है। पुनरावर्त्तन्ते=बार बार जन्म लेते हैं। तस्मात्=इन कर्मों से। एते=यह। ऋषयः=ऋषि लोग प्रजाः कामा=संतान की इच्छा रखते हुए। दक्षिणं=निचला अर्थात् कुमार्ग पर। प्रतिपद्यन्ते=कर्म करते हैं। यः=जो। पितृयाणः=जो बार-बार जन्म देने वाला पितादि। एष= यह। ह=किया हुआ। वै=निश्चय। रयि=भोगने योग्य वस्तु है।

अर्थ—वर्ष अर्थात् समय का एक भाग प्रजापति है, इसके जाने के दो मार्ग हैं। एक दक्षिण दूसरे उत्तर आदि हैं। वर्ष तक सूर्य पृथिवी के भूमध्यरेख से उत्तर की ओर रहता है। अर्द्ध वर्ष तक दक्षिण की ओर अर्थात् प्रजा भी दो प्रकार के काम करती है। एक वह काम जिसका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फल जन्म-मरण है, जिस की अभिलाषा मनुष्यों में लगी हुई है, जो कर्म प्रत्यक्ष वस्तु के प्राप्त करने के लिये किये जाते हैं। जिससे यज्ञ करना, कूप, सरित, बावली, वाटिका उपवन इत्यादि बनवाना। इस तात्पर्य से कि दूसरे जन्म में भी ऐसा मिले, तो मन में इनके संस्कारों के स्थित रहने से अवश्य है। माता, पिता के द्वारा उन पदार्थों को भोगने के अर्थ जन्म लेना पड़ता है। स्वार्थ वाले कर्म का फल चन्द्रलोक में सफल है। यहां चन्द्रलोक से तात्पर्य वह शरीर है, जिस में भोग भोगा जावे। इस स्वार्थ से कर्म करने वाले मनुष्य बार-बार इस संसार में जन्म लेते हैं, एक शरीर छूटता है, दूसरा तुरन्त मिल जाता है। इस कारण जो ऋषि सन्तानार्थ कर्म करते हैं वह मुक्ति के अर्थ निष्काम करने वाले की अपेक्षा नीच कहलाते हैं। यद्यपि पाप की अपेक्षा स्वार्थ-कर्म भी जो शुभ है उत्तम है, परन्तु उन कर्मों से जो किसी प्रत्यक्ष स्वार्थ से नहीं किये जाते हैं, जो केवल धर्म समझ कर किये जाते हैं, उनकी अपेक्षा स्वप्न में उत्तम कर्मों के अर्थ उत्तर और नीच के लिये दक्षिण का शब्द प्रयोग किया गया है। निदान जो पितृयाण बार बार जन्म लेता है और शरीर के भोग को भोगता है, यही भोग्य है, इसको रयि कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन्त्र—अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते। एतद्वै प्राणानमायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणमेतस्मान्न पुनरावर्त्तन्ते इत्येष निरोधस्तदेषः श्लोकः ॥ १० ॥

शब्दार्थ—अथ=उसके बाद। उत्तरेण=शुभ और उत्तम कर्मों से या ज्ञान-कर्म को दक्षिण मान कर ज्ञान से। तपसा=गरमी-सरदी, मान-अपमान, भूक-प्यास और सतादि व्रतों के पालन में जो कष्ट होता है, उस ब्रह्मचर्येण=वेदानुकूल इंद्रियों को वश में रखने से। श्रद्धया=श्रद्धा से विद्यया=ज्ञान से। आत्मानम्=परमात्मा या जीवात्मा को अन्विष्या=जानकर। आदित्यम्=सूर्य लोक को। अभिजयन्त=वश में करते हैं। एतत वै=यही भोगता अर्थात भोगने वाले का स्वरूप है। प्राणानाम्=प्राणों को। आयतनम्=ठहरने की जगह है, इस के आधार प्राण स्थित रहते हैं। एतत्=यही। अमृतम्=नाश रहित। अभयम्=भय रहित। एतत्=यही। प्रायणम्=ज्ञानका अंतिम मार्ग। एतस्मात=इस आत्मज्ञान से। न=नहीं। पुनः आवर्त्तन्ते=इस कल्प में लौटते हैं। इति=अंतिम। एष=यह निरुद्ध ज्ञान का अन्त है। तत=उसका वर्णन करने वाला। एष=यह। श्लोकः=श्लोक है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—जो मनुष्य दूसरे नियम पर जिसको देवयान् अर्थात् विद्वानों का मार्ग कहा गया है, कर्म करके शीतोष्ण क्षुधा, तृषा मानापमान को सहन करता हुआ ब्रह्मचर्य व्रत को वेदाज्ञानुकूल पालन करने से इंद्रियों को वश में रख कर गुरु में श्रद्धा रखता हुआ, रात दिन विचार करके और सत् विद्या के द्वारा आत्मा को जान लेता है, वह आदित्य अर्थात् भोगता के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। यही भोगता अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा का ज्ञान है, मनुष्य जीवन का उद्देश्य मार्ग है। वहां पर पहुंच कर प्राणों का काम समाप्त हो जाता है। यही अमृत अर्थात् मुक्ति है। और यही दशा प्रत्येक प्रकार के भय से रहित है। यह इस ब्रह्माण्ड के भीतर ज्ञान की सब से अंतिम पदवी है। जिस के जानने के पश्चात् फिर कुछ जानना शेष नहीं रहता। जिस प्रकार प्रत्येक जन्म मरकर जन्म लेना पड़ता है और जन्म के पश्चात् मौत आती है। यहां पहुंच कर वह क्रम टूट जाता है। इसको प्राप्त करके इस सङ्कल्प के भीतर फिर जीवात्मा जन्म नहीं लेता। यही ज्ञान इस जन्म मरण के चक्कर का जिस में फँसा हुआ जीवात्मा दुख उठा रहा है, समाप्त है। इस श्लोक में इस बात का वर्णन है।

प्रश्न—जब कि जीवात्मा नित्य है, तो वह सदा अमर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। इस दशा में अमृत क्यों कहा गया, जब कि सदा ही अमृत है।

उत्तर—जन्म के अर्थ, जीव और शरीर का संयोग है, और मौत का अर्थ, जीव और शरीर का वियोग है। फिर जन्म के पश्चात् मौत और मौत के पश्चात् जन्म होता है। परन्तु मोक्ष की वह अवस्था है, जो मर कर नहीं छूटती; किन्तु जन्म से छूटती है। इसी कारण प्रत्येक योनि मरने से छूटती है और मोक्ष जन्म से छूटता है।

प्रश्न—इस दशा में मौत और मोक्ष में क्या भेद है, क्योंकि मोक्ष भी जन्म लेने से छूटती है और मौत भी जन्म लेने से।

उत्तर—मौत के समय कर्म विद्यमान होते हैं जिनके कारण से भोग योनि या उभय योनि में जाना अवश्य होता है। परन्तु मोक्ष में कर्म नहीं होते। दूसरे मौत के समय सूक्ष्म शरीर संस्कारों के सहित विद्यमान होता है। परन्तु मोक्ष में सूक्ष्म शरीर और संस्कार विद्यमान नहीं होते, केवल कर्म-योनि में से मोक्ष से लौटकर जीव आते हैं।

प्रश्न—बहुत से मनुष्य मोक्ष में भी सूक्ष्म शरीर मन और इन्द्रियों को जीव के साथ मानते हैं।

उत्तर—सूक्ष्म शरीर दो प्रकार का है। एक तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सत्रह तत्त्वों का योग, जो भूतों के अंशों से बना हुआ है। दूसरा जीवात्मा की स्वाभाविक शक्तिरूप सूक्ष्म भूतों का बना हुआ तो पुनर्जन्म में साथ रहता है, परन्तु मुक्ति में दूसरा स्वाभाविक शरीर रहता है, भौतिक नहीं रहता।

प्रश्न—बहुत मनुष्य भौतिक सूक्ष्म शरीर को भी मुक्ति में जीव के साथ मानते हैं।

उत्तर—यह केवल अविद्या है, क्योंकि यदि भौतिक शरीर मुक्ति में भी नाश न हो, तो बंधन में किस प्रकार नाश हो सकता है। क्योंकि उस समय कर्मों के संस्कार जो भोगने योग्य हैं, मन में मौजूद होते हैं। जो मुक्ति और बंधन दोनों दशाओं में नाश न हो, वह नित्य हो जावेगा। जब सूक्ष्म शरीर नित्य हो गया, तो वह भौतिक कहला नहीं सकता। क्योंकि भौतिक उसे कहते हैं, जो भूतों के अंशों से बना हो। जो बना है, वह नित्य कहला नहीं सकता। सम्भव है, बहुत से मनुष्य कहने लगें कि जिस प्रकार वेद बने हैं और नित्य भी हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर बना भी है और नित्य भी है। परंतु यह विचार सत्य नहीं, क्योंकि वेद गुण है। परमात्मा ज्ञान स्वरूप का गुण का गुणी के साथ समवाय सम्बन्ध होता है। अतः जब से परमात्मा तब से उसका ज्ञान वेद भी है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—जब से परमात्मा है, यदि तब ही से वेद भी है, तो वेद ईश्वर-कृत है, क्यों कहते हैं ?

उत्तर—ईश्वर का ज्ञान अनन्त है, उसमें जीवों की मुक्ति के योग्य ज्ञान परमात्मा वेद के द्वारा देते हैं। अपने अनंत ज्ञान में से विभाग करने के कारण वह वेद के कर्ता कहलाते हैं। विभाग से उत्पन्न हुए से कहलाये और इस उत्पत्ति से पूर्व वैसे ही (जैसे हैं) विद्यमान होने के कारण नित्य हो सकते हैं। परन्तु भौतिक सूक्ष्म शरीर संयोग से उत्पन्न होता है। संयोग से उत्पन्न हुई कोई वस्तु नित्य हो ही नहीं सकती।

मंत्र—पंचपादम् पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धेपुरीषिणम्। अथेमेऽन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडरआहुरर्पितमिति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—पंचपादम्=पंच ऋतु जिनके पाँव के अनुकूल। द्वादशाकृति=द्वादश मास जिसकी आकृति। पितरम्=रक्षा करने वाले। दिवा=सूर्य से ऊपर का आकाश। आहुः=कहते हैं। परे=परली ओर के। अर्द्ध=अर्द्ध भाग में। पुरोषिणम्=जिसके साथ जल का कारण कार्य भाव का सम्बन्ध है अर्थात् वर्षा का कारण है। अथ=अब और। अन्ये=दूसरे विद्वान्। परे=उस वर्ष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को जो काल का उत्तम भाग है। विचक्षणं = जो विशेषता के साथ दूसरों को दिखला सकता है। सप्तचक्रे = जो भ आदि सप्त लोकों में घूमता है अथवा सात रंगों की जिस की किरणें हैं। षडर = षट्ऋतु जिस वर्ष के अङ्ग हैं। आहुः = कहते हैं। अर्पितम् = रथ में जिस प्रकार नाभी लगी होती है, ऐसे लगा हुआ।

अर्थ—जिस वर्ष को प्रजापति बताया था, अब उसका लक्षण बताते हैं कि वह संसार में पंच ऋतुओं को पिता की भांति उत्पन्न करता और रक्षा-पूर्वक नियम में चलाता है। यद्यपि ऋतुएँ षट् हैं, परन्तु यहां शरद ऋतु को हेमन्त में संयुक्त कर दिया है, क्योंकि दोनों में शीत होता है। केवल न्यूनाधिक का अंतर है, जिसकी आकृति द्वादश मास को एकत्रित करने से प्रकट होती है अर्थात् द्वादश मास का वृतान्त है। जिसका वर्षा के साथ उत्पन्न करने का सम्बन्ध अर्थात् जो वर्षा को उत्पन्न करता है। जिसके ऊपर के अर्द्ध भाग में सूर्य के ऊपर का भाग है। दूसरे विद्वान् लोग इस प्रकार भी विभाग करते हैं कि वह काल का उत्तम भाग है, जो षट् ऋतुओं का योग है। जिस प्रकार सूर्य आदि सप्त लोकों को अपने सामने घुमाता है और जिस प्रकार रथ की नाभि में आरे लगे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होते हैं। उसी प्रकार इस वर्ष के चक्कर में यह सब ऋतुएँ और मास इत्यादि लगे हुए हैं।

प्रश्न—लक्षण तो वर्ष का करने लगे थे, परन्तु वर्णन बहुत कुछ सूर्य की परिक्रमा का कर दिया।

उत्तर—सूर्य के परिक्रमा से ही काल अर्थात् समय का विभाग होता है, इस कारण दिन, रात, मास, वर्ष सूर्य की चाल से ही प्रकट होते हैं।

प्रश्न—क्या सूर्य घूमता है, या पृथिवी ? क्योंकि रात दिन इत्यादि भूमि की चाल से उत्पन्न हुए माने जाते हैं। इसे सूर्य की चाल क्यों लिखा ?

उत्तर—यहां उपचार से दिखलाया है, जैसे रेल में बैठ कर जब लाहौर पहुंचते हैं, तो कहते हैं लाहौर आ गया। यहां आना लाहौर में है, या रेल में ? आना रेल में है, परन्तु कह लाहौर में देते हैं।

मन्त्र—मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णापक्ष एव रयिः। शुक्लः प्राणस्तस्मोदृत्ते ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्वन्तीतर इतरास्मिन् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—मासा=मास जो है। व=निश्चय करके। प्रजापतिः=प्रजा का स्वामी उत्पत्ति कर्ता है। तस्य= उसका। कृष्णपक्ष=अंधेरा पक्ष जो है। एव=है। रयि=

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भोगने योग्य वस्तु है और । शुक्लपक्ष=चंद्रपक्ष । प्राणः= भोगता है । तस्मात्=इस कारण से । एते ऋषय=यह ऋषि लोग । शुक्ले=उजाला पक्ष । इष्टिं=यज्ञ को । कुर्वन्ती=करते हैं । इतरे=जो वेद के ज्ञान से शून्य हैं । इतरस्मिन्=कृष्ण पक्ष में यज्ञ करते हैं ।

अर्थ—जो गुण अवयवों में न हो, वह कुल में हो नहीं सकता । अतिरिक्त पांच गुणों के इस हेतु वर्ष के भाग मास हैं । उनसे प्राण अर्थात् भोगता योग्य वस्तु की तकसीम दिखाते हैं कि कृष्णपक्ष है और शुक्लपक्ष प्राण है । तात्पर्य्य यह है कि जिसमें ज्ञान है, वह भोगता और जो ज्ञान से रहित है, वह भोगने योग्य वस्तु है । जो मनुष्य वेदों के ज्ञाता हैं, वह ज्ञानानुकूल यज्ञादि सब कार्य करते हैं । वह शुक्लपक्ष में यज्ञ आदि कर्म करते हैं और जो मनुष्य ज्ञान से रहित हैं, वह वेद के विरुद्ध कर्म कर के दुख पाते हैं । क्योंकि जो अंधेरे में चलता है, वह निश्चय मार्ग पर नहीं पहुंच सकता; प्रायः ठोकर खाता है । और जो प्रकाश में अर्थात् उद्देश्य और पथ को देखकर कर्म करता है वह सफलता को प्राप्त होता है । देखकर चलने वाले को ठोकरें भी नहीं मिलतीं । तात्पर्य यह है, दो शक्तियें मार्ग पर लेजाने वाली होती हैं । एक नेत्र,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरे सूर्य। जो इन दोनों को काम में लाता है, वह दुःखों से बच जाता है। जो अंधेरे में चलता है, या दिन के समय नेत्र बन्द करके चलता है दोनों दशाओं में हानि उठाता है। इस हेतु आत्मिक मार्ग समाप्त करने के हेतु वेद और बुद्धि दोनों के अनुकूल कर्म करना चाहिये। यदि वेद के अर्थों को बिना बुद्धि से काम लिया जावे या बुद्धि को बिना वेद के काम में लाया जावे, तो दोनों अवस्थाओं में सफलता नहीं हो सकती। ऐसी भूल में सम्पूर्ण संसार के मनुष्य लिप्त हुए दुख पा रहे हैं।

मंत्र—अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति। ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते। ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—अहोरात्रः=दिन रात। वै=निश्चय करके। प्रजापतिः=संसार के प्रबंध के चलाने वाले हैं। तस्य=उसका। अह एव=दिन ही। प्राणः=प्राण अर्थात् भोगता शक्ति है। एव=ही। रात्रि=रात। रयि=भोगने योग्य वस्तु है। प्राणं=प्राणों को। दिवा=जो मनुष्य। एते=यह। प्रस्कन्दन्ति=सुखाते या विनाश करते हैं। यः=जो। दिवा=दिन। रत्या=स्त्री से। संज्यन्ते=सम्बन्ध करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रह्मचर्यं=ब्रह्मचर्य । एव=भी है । तत्=वह । यत्=जो । रात्रौ=रात के समय । रत्या=स्त्री से । संयुज्यन्ते=सम्बन्ध करते हैं ।

अर्थ—अब रात्रि दिवस और दिवस को जो सूर्य के सम्मुख पृथिवी के परिक्रमा से उत्पन्न होते हैं, प्रजापति मान कर कहते हैं कि इनमें से दिन प्राण है, अर्थात् भोगता है, जो इस भोगने वाले दिन में भोग करता है, वह अपने प्राणों को हानि पहुंचाता है; अर्थात् जीवन को न्यून करता है। इस कारण दिन के समय भोग करना पाप है। जो मनुष्य रात्रि को सम्बन्ध करते हैं, वह एक प्रकार के ब्रह्मचारी हैं। क्योंकि इन में अर्द्ध रात्रि तक विषय-वासना को रोकने की शक्ति है। जितना मन और इन्द्रियों पर अधिकार रख सकें और वेदानुकूल कर्म करे, यही ब्रह्मचर्य। और जितना वेद के आज्ञा विरुद्ध इन्द्रियों का दास बन कर कर्म करे, यही हानिकारक है। निदान, दिन से विषय-भोग आत्मा के बल को हानि पहुंचाने वाला है, या शरीर को रोग-ग्रसित करने वाला है। जितना रोका जावे, उतना लाभकारी है। सूर्य या दीपक किस प्रकाश की दशा में यह प्राणों को हानिकारी है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंत्र–अन्नम् वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥१४॥

शब्दार्थ—अन्नम् वै=यह गोधूम माष, चावल इत्यादि जो अन्न हैं। प्रजापतिः=सब जगत् की उत्पत्ति और जीवन का हेतु होने से प्रजापति कहलाता है। ततो हवै=उस प्रसिद्ध अन्न से ही। तत्=उससे। रेतः=स्त्री पुरुष का रज वीर्य उत्पन्न होता है। तस्मात्=उस रज वीर्य्य से। इमाः प्रजाः=यह जीवयुक्त संसार। प्रजायन्त=उत्पन्न होती है।

अर्थ—सब जगत् की उत्पत्ति और जीवन का हेतु होने के जैसे अन्न ही प्रजापति है, उस अन्न के खाने से स्त्री और पुरुष जीवों में वीर्य और रज उत्पन्न होता है। जिससे सम्पूर्ण प्रत्यक्ष दृष्टि आने वाली जगत् की उत्पत्ति होती है। क्योंकि बिना रज वीर्य के संयोग के सृष्टि उत्पन्न होती दृष्टि नहीं आती।

प्रश्न—क्या आदि सृष्टि में जो ऋषि उत्पन्न हुए या यवनमत के अनुसार जो पैग़म्बर से उत्पन्न हुए, वह किसके रज-वीर्य से उत्पन्न हुए।

उत्तर—दो प्रकार से सृष्टि उत्पन्न होती हुई दृष्टि आती है यथा कोई सांचा बनाता है, तो वह सांचे से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सांचा नहीं बनाता किंतु पहला सांचा हाथ से बनाता है, फिर सांचे से सांचा बनता है। इसी प्रकार आदि सृष्टि में जो मनुष्य उत्पन्न होते हैं, वह प्रकृति माता और परमात्मा पिता के कारण ईश्वर की शक्ति के साथ से उत्पन्न होते हैं। पश्चात् जब मनुष्य सांचा में बन जाता है, तो उनके रज-वीर्य के साथ उत्पत्ति का क्रम आरम्भ होता है।

प्रश्न—क्या, इन ऋषियों को पृथिवी उगल देती है, जो एक साथ युवा उत्पन्न हो जाते हैं ?

उत्तर—रज-वीर्य भोजन से उत्पन्न होता है। भोजन में कहां से आता है ? परमाणुओं से । अतः परमात्मा क्रिया (हरकत) देकर रज-वीर्य बनने योग्य परमाणुओं को नियम से मिला देते हैं, जिससे वह शरीर बन जाते हैं।

प्रश्न—यह बात समझ में नहीं आती कि एक दम से युवा कैसे उत्पन्न हो जाते हैं ?

उत्तर—जब सूर्य चंद्र या और पृथिवी जैसे बड़े-बड़े लोक बनते हुए मानते हो, क्या सूर्य थोड़ा-थोड़ा सा मिल कर बना है, अथवा एक दम से ? यदि थोड़ा-थोड़ा सा बनता, तो सूर्य सम्बन्धी लोक कभी स्थित नहीं होता । जिस प्रकार यूरुप में इंजन ढालने वाले कार्य्यालय हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक दम से इतना बड़ा इंजन बड़े-बड़े गार्डर इत्यादि ढल जाते हैं। परंतु भारतवर्ष में नहीं ढलते। तो क्या यह विचार करना चाहिये कि यह पूर्व छोटे उत्पन्न होते हैं, पुनः पालन पोषण से इतने बढ़ जाते हैं। यह समझ में न आना केवल परमात्मा की शक्तियों को न जानने का फल है। एक ओर तो बड़े आम की गुठली से आम का वृक्ष होता है, दूसरी ओर बूहर अत्यंत छोटे बीज से आम से भी बड़ा वृक्ष उत्पन्न हो जाता है।

मंत्र—तद्ये हे तत्प्रजातिव्रतं चरन्ति ते मिथुन-मुत्पादयन्ते। तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—तद् = वह उपरोक्त कथित। ह = प्रसिद्ध। ये = जो मनुष्य इंद्रियों को वश में रखने वाले। प्रजाप-पतिवर = प्रजा के रक्त के व्रत को अर्थात् नियम-पूर्वक गर्भाधान आदि। चरंति = करते हैं। ते = वह लोग। मिथुनम् = पुत्र पुत्री दोनों प्रकार की संतान को। उत्पा-दयंते = उत्पन्न करते हैं। तेषाम् = उनके अर्थ ही। ब्रह्म-लोक = ब्रह्मज्ञान का दर्शन होता है। येषाम् = जिन का मन। तपः = तप। ब्रह्मचर्यम् = इंद्रियों को रोक कर नियम-पूर्वक वेदों की शिक्षा पाना। येषु = जिनमें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सत्यं प्रतिष्ठितम् = सत्यव्रत अटल जिनका व्रत कभी न टले ।

अर्थ—जो मनुष्य नियमानुसार इस संसार में संतान उत्पन्न करते हैं अर्थात् व्यभिचार आदि से रहित होकर जो नियम-पूर्वक ग्रहस्थाश्रम करते हैं, उनकी संतान दोनों प्रकार की होती है। जो मनुष्य नियम-विरुद्ध व्यभिचार आदि करते हैं, वह संतान-रहित इस संसार से चल देते हैं। वही मनुष्य ब्रह्मज्ञान के द्वारा मुक्ति के आनंद को प्राप्त करते हैं, जो पूर्व ब्रह्मचर्याश्रम नियमानुकूल करके और विद्या से आत्मा को दृढ़ बना लेते हैं, अथवा तप से। और ब्रह्मचर्याश्रम और गृहस्थाश्रम वानप्रस्थाश्रम इन तीनों को वेद के अनुकूल दृढ़ व्रत होकर करते हैं। जिनके भीतर ईश्वर-विश्वास दृढ़ता पूर्वक स्थित होता है कि जिसको कोई गिरा ही न सके। ईश्वर-विश्वास संन्यासाश्रम में दृढ़ होता है। अतः मुक्ति के परमानन्द को वही मनुष्य प्राप्त करते हैं, जो चारों आश्रम ब्रह्मचय, गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास वेद की आज्ञानुकूल मार्ग से न गिरते हुए कर्म करते हैं। और जो मनुष्य आश्रम व्यवस्था को तोड़ने अथवा अवैदिक रीति से आश्रम को ग्रहण करते हैं, वह मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकते।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंत्र—तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥१६॥

शब्दार्थ—तेषाम् = उन मनुष्यों के लिये। असौ = उपरोक्त शरीर छोड़ने के पश्चात प्राप्त होने वाला। विरजः = सब प्रकार के दोषों से रहित। ब्रह्मलोको = ब्रह्म देश है। न = नहीं। येषु = जिनमें। जिह्म = छल कपट धूर्तता इत्यादि। अनृतम् = मिथ्या काम। न = नहीं। माया = आत्मा के विरुद्ध। च = और। इति = यह प्रश्न समाप्त हुआ।

अर्थ—वही मनुष्य परमात्मा के दर्शन करने के योग्य हैं कि जो छल कपट धोका आदि हर प्रकार से रहित हैं, न जिन में पालसी है। जो किसी प्रकार के मिथ्या कर्म करते हैं, बिना ज्ञान के अन्य पदार्थों की उपासना करते हैं, और न आत्मा के विरुद्ध मानते और न करने को उद्यत होते हैं। जो मनुष्य इन दोषों से रहित होकर चारों आश्रमों को पूरा करते हैं, वह मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं, अन्य नहीं।

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथ द्वितीय प्रश्न

मन्त्र—अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ। भगवन्! कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत् प्रकाशयंते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति॥ १। १७॥

शब्दार्थ—अथ = कात्यायन के प्रश्नोत्तर के पश्चात्। एनं = इन पिप्पलाद ऋषि का। भार्गवः = भार्गव ऋषि के गोत्र में उत्पन्न हुआ। वैदर्भिः = वैदर्भि के पुत्र ने। पप्रच्छ = पूछा। भगवन् = हे गुरु महाराज। कति = कितने। एव = ही। देवाः = देवता। प्रजा = प्रजाको। विधारयंते = स्थापित रखते हैं। कतरः = कितने। एतत् = इस जगत्को प्रकाशयन्ते = प्रकाशक। कः = कौन। पुनः = फिर। एषाम् = इनमें। वरिष्ठ = उत्तम है। इति = इस प्रकार पूछा—

अर्थ—जब कात्यायन के प्रश्न का उत्तर पिप्लाद ऋषि दे चुके, तो भार्गव गोत्र में उत्पन्न हुआ वैदर्भि नामी ऋषि ने प्रश्न किया कि महाराज इस जगत् को विशेष धारण करने वाले कितने देवता हैं? क्योंकि कोई वस्तु स्वयम् विना कर्त्ता के कभी स्थित नहीं हुआ करती और जो उत्पन्न होती है, वह किसी के बिना रह नहीं सकती। कौन से देवता हैं, जो मुक्ति रूप होकर उस प्रजा की अनेक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकार की आकृति को स्थित रखते हैं और कौन उसको प्रकाशित करते हैं ? फिर उन देवताओं में सर्वोत्तम कौन सा देवता है। इस एक प्रश्न में तीन प्रश्न हैं। प्रथम इस जगत् की आकृति कौन धारण करता है, अर्थात् इस जगत् का उपादान कारण क्या है ? द्वितीय यह कि कौन इस को प्रकाशित करता है, अर्थात् इस में जो ज्ञान है, उसका साधन क्या है ? तृतीय इन सब देवताओं में सब से उत्तम देवता कौन है ? इसका उत्तर ऋषि देते हैं।

मन्त्र—तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च। ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामः ।२।१.८।।

शब्दार्थ—तस्मै=उस वैदर्भि को। स=वह पिप्पलाद ऋषि। हो वाच=स्पष्ट कहने लगे। हुवै=निश्चय करके। आकाशः=आकाश। एष देवः=यह प्रकाश मान। वायुः=वायु। अग्निः=अग्नि। आपः=जल। पृथिवी=भूमि। वाक्=जिह्वा। मनः=मन। चक्षु=नेत्र। श्रोत्रम्=कान। च=और। ते=वह। प्रकाश्य=निज महिमा को प्रकाशित करते हुए। अभिवदन्ति=कहते हैं। वयम्=हम भी। एतत्=इसके। वाणम्=इसके ठहरने में संदेह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है । अवष्टभ्य = रोक कर । विधारयामः = विशेषता के सहित धारण करते हैं ।

अर्थ—पिप्पलाद ऋषि ने स्पष्ट उस वैदर्भि ऋषि से कहा, निश्चय करके पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पंच तत्त्व इस शरीर के उपादान हैं । और वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ तथा लिंगेन्द्रिय मिलाकर पांच कर्मेन्द्रियां और मन अर्थात् चारों प्रकार के अंतःकरण जिसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकर कहते हैं, जो मन की चार प्रकार की अवस्था हैं । और आंख, कान, नाक, रसना, त्वचा इत्यादि ज्ञानेंद्रियां यह अभिमान से कहते हैं कि जिस प्रकार उस मकान की छत को जिसके गिरने का संदेह हो शहतीर के थुने देकर स्थित रखते हैं । ऐसे ही हम शरीर को स्थित रखते हैं । यद्यपि मन और इस इंद्रियां प्राण सब जड़ हैं, परंतु अलङ्कार रूप से जो उनका शास्त्रार्थ है, उसको प्रकाशित करते हैं, जिससे सत्यज्ञान के जानने वालों को विदित हो जावे कि आन्तरिक अवस्था क्या है । इस कारण इस प्रश्न के उत्तर में ऋषि प्राण और इंद्रियों का शास्त्रार्थ दिखलाते हैं ।

प्रश्न—श्रुति ने केवल वाणी पृथक्-इंद्रिय लिखी। तुम ने पांचों कर्म-इंद्रियां किस प्रकार ग्रहण कीं और मन लिखा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। उसके चारों प्रकार के अन्तःकरण और आंख कान से सब कर्म-इंद्रियां कैसे ग्रहण कीं ?

उत्तर—लक्षण आदि से उस प्रकार की वस्तुओं का ग्रहण होता है। इस लिये उपपक्ष अर्थात् एक-एक दो-दो वर्णन करके आगे श्रुति ने सब का लक्षण दे दिया है। जिससे सब कर्म-इंद्रियां, ज्ञान-इंद्रियां और चारों प्रकार के अन्तःकरण लिये जा सकते हैं।

प्रश्न—जड़ इंद्रियों में अभिमान कैसे हो सकता है ? जब अभिमान हो ही नहीं सकता, तो अभिमान से कहना क्यों लिखा ?

उत्तर—अभिमान न तो चैतन्य अर्थात् ज्ञान-स्वरूप को होता है और न जड़ को होता है। किन्तु सदा न्यून विद्या वाले को होता है। सो यह इंद्रियां, जो अल्पज्ञानी जीवात्मा की शक्ति से क्रिया (हरकत) पाती हैं, अहङ्कारी अर्थात् अभिमानी कहला सकती हैं।

मंत्र—तान् वरिष्ठः प्राण उवाच मा मोहमा-पद्यथाऽहमेवै तत्पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्यैतद्बाण-मवष्टभ्य विधारयामीति ॥ ३।१९ ॥

शब्दार्थ—तान्=उन इन्द्रिय रूप देवतों को। वरिष्ठः= इनमें सब से उत्तम। प्राणः=प्राणों ने। उवाच=कहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मा=मत । मोहं=मोह । आपद्यथ=अभिमान से भूल मत करो । अहम्=मैं । एव=है । एतव=इस प्रत्यक्ष । पंचधात्मानं=इस पांच प्रकार के अर्थात् प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान । प्रविभज्य=विभाग करके । एतत्=इस । बाणम्=शरीर को । अवष्टभ्य=होकर । विधारयामि=धारण करता हूँ ।

अर्थ—इन्द्रियों के इस अभिमान को देख कर उनमें से सब से श्रेष्ठ जो प्राण हैं, उसने कहा—हे इन्द्रिय रूप देवतों ! तुम अज्ञान से भूल में मत पड़ो । इस शरीर को तुम धारण नहीं करते कि तुम्हें स्वयम् आपको पांच प्रकार से विभाजित करके अर्थात एक प्राण, द्वितीय अपान, तृतीय व्यान, चतुर्थ समान, पंचम उदान रूप हो कर, इस शरीर को गिरने से रोक कर धारण करता हूँ। तुम इसको धारण करने वाले नहीं किन्तु मैं हूँ । अब यह शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ कि शरीर को धारण करने वाला कौन है ? इन्द्रियों का पक्ष है कि शरीर हमारे कारण से स्थित है । और प्राणों का पक्ष है कि शरीर हमारे कारण से स्थित है । आगे चल कर प्रमाणों से निर्णय होगा । क्योंकि इस सिद्धान्त के साथ मनुष्य-जीवन का बहुत बड़ा सम्बन्ध है कि मनुष्य का इन्द्रियों के विषयों के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भोगने से जीवन होता है। अथवा प्राणों की रक्षा, प्राणायाम इत्यादि और प्राणों को ठीक रखने वाला भोजन हो। और अन्य सामान से आगे इस विचार को देखते हैं।

मंत्र—तेऽश्रद्दधाना बभूवुः सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिꣳश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठते। तद्यथा मक्षिका मधुकरराजान मुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिꣳश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं, वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ॥४।२०॥

शब्दार्थ—ते=वह इन्द्रिय रूप देवता। अश्रद्दधानाः=श्रद्धा से शून्य। बभूवुः=होगये या उन्होंने अपना काम छोड़ दिया, जिससे शरीर नष्ट हो जावे, इस पर वह प्राण। अभिमानात=अभिमान से। उर्ध्वमुत्क्रमतः=शरीर को छोड़ कर चल दिया। तस्मिन्=उस प्राण। उत्क्रामयथ=उठ कर जाने से। उतरे=अन्य सब देवता अर्थात् इन्द्रियां। सर्व एवोत्क्रामन्ते=सब छोड़ कर चल दिये। तस्मिनप्रतिष्ठमाने=उसके आ जाने पर। सर्व=सब इन्द्रियां। एव=है। प्रातिष्ठन्ते=ठहर गये। तत=वह। यथा=जैसे। मक्षिका=मधु मक्षी। मधुकर राजान=मक्षियों के राजा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के । उत्क्रामन्तं=उठते ही । सर्वा=सब । एव=ही । उत्क्रामन्ते=उठ कर चल देती हैं । च=और । तस्मिन्=उसके । प्रतिष्ठमाने=ठहरने पर । सर्व=सब । एव=ही । प्रातिष्ठंते=ठहर जाते हैं । एवम्=इसी प्रकार । वाक्=वाणी । मनः=मन । चक्षुः=नेत्र । श्रोत्रम्=कान । च=और । ते=वह । प्रीताः=प्राण को अपना जीवन समझ कर । प्राणं=प्राण को । स्तुवन्ति=प्रशंसा करते हैं ।

अर्थ—जब प्राण ने कहा कि मैं इस शरीर को रोकने वाला हूं । तब इंद्रियों ने इसको बड़ा मान कर, निज कार्य को त्याग दिया, यह शरीर नेत्र के जाने से अन्धा होगया परन्तु जीवित रहा । कान के काम न करने से वधिर हो गया, परन्तु जीवित रहा । वाणी के काम न करने से गूंगा हो गया, परन्तु जीवित रहा । हाथ के काम न करने से लूला हो गया, परन्तु जीवित रहा । इसी प्रकार प्रत्येक इंद्रिय के काम त्याग देने से जीवित बना रहा । इंद्रियों की इस दशा को देख कर प्राण ने अपना बल दिखलाने के अर्थ अभिमान से शरीर को त्याग दिया । क्योंकि बिना प्राण के इंद्रियों की रक्षार्थ जिस रस की आवश्यकता है, वह रस किस प्रकार मिल सकता था । प्राण ही भोजन को पचा करके सम्पूर्ण शरीर को विभाजित करता है, जिससे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इंद्रिया भी जीवित रहती हैं। जब प्राण के साथ ही इंद्रिया शरीर को त्याग कर चली गई तो प्राण फिर शरीर में आ गया। जिसके साथ ही इंद्रियां पुनः आ गईं। क्योंकि इंद्रियां बिना प्राणों के कुछ कर ही नहीं सकतीं। जिस प्रकार मधु के क्षत्ता में जो मक्षियों की राणी होती है, जब तक वह छत्ते में रहती है, तब तक मक्खियां बैठी रहती हैं और जब वह राणी छत्ते को त्याग करके चल दे, साथ ही मक्खियां भी चली जाती हैं। जहां राणी बैठ जावे, वहीं सब बैठ जाती हैं। ऐसा ही सम्बन्ध प्राण और इंद्रियों का है। जहां प्राण होंगे, वहीं इंद्रियां काम कर सकती हैं। यदि प्राण न हों, तो इंद्रियां कुछ कर ही नहीं सकतीं। मन और इंद्रियों को वश में करने के लिये प्राणों को वश में करना आवश्यक है। जब तक प्राण वश में न आ जावे, मन और इंद्रियां वश में आ ही नहीं सकतीं। प्रत्येक कर्म जो इस शरीर से होता है, उसका मूल प्राण है। क्योंकि प्राण ही से सम्पूर्ण शरीर ही क्रिया करता है। जब इंद्रियों ने देखा कि हमारा तो जीवन ही प्राणों के साथ है जब तक प्राण रहेंगे तब ही तक हम जीवित रह कर काम कर सकती हैं। और जहां प्राण पृथक् हुए, हम इस शरीर में रह ही नहीं सकतीं। तब प्राणों को अपना जीवन समझ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर उसकी प्रशंसा (बड़ाई) करने लगीं । ब्रह्मविद्या के जानने वालों ने इस ज्ञान से भी इसे योग दिया कि हम प्राणायाम आदि कर के जीवन को भी स्थित रख सकते हैं। और मन तथा इंद्रियों के द्वारा जो दोष उत्पन्न होते हैं, उनको भी रोक सकें।

मन्त्र—एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदस च्चाऽमृतं च यत् ॥ ५ । २१ ॥

शब्दार्थ—एष=भोगने वाले प्राण । अग्नि=आग हो कर । तपति=तपता है, यदि प्राण अर्थात् वायु न हो, तो अग्नि नहीं जल सकती । एष=यही । सूर्यः=सूर्य ही । एष पर्जन्यो=इस प्राण के कारण से वर्षा होती है । एष=यही प्राण । मघवान=अनेक प्रकार के धन को उत्पन्न करता है। एष=यही । वायुः=ले जाने वाला वायु है । एष=यही प्राण । पृथिवीं=पृथिवी की भांति प्रत्येक वस्तु को रोकता है । अयिर्देवः=यही सब को भोगता है । सत्=कारण रूप । असत=कार्य रूप । अमृतम्=नाश से रहित कारण रूप । च=और । यत्=जो है ।

अर्थ—प्राण का लक्षण करते हैं कि यह अन्न ही अग्नि की गरमी का कारण है। क्योंकि वायु से ही अग्नि उत्पन्न होती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है जहां प्राणवायु न हो वहां अग्नि जल ही नहीं सकती। यदि घड़े के भीतर जहां वायु न लगे, दीपक जलाकर रख दिया जावे तो शीघ्र (तुरन्त ही) बुझ जाता है। कारण यह है कि प्राण वायु इधर उधर से अग्नि के परमाणुओं को लाकर सम्मिलित नहीं करता। सूर्य तो प्राणरूप है, क्योंकि सूर्य भी अग्नि का बीज है और अग्नि प्राण से उत्पन्न हुई। अतः सूर्य भी प्राण से ही उत्पन्न हुआ है। यही प्राण वायु स्वरूप है और इसके कारण से पृथिवी स्थित है, यही प्राण पृथिवी का काम देता है। क्योंकि सब शरीरों को जिस प्रकार पृथिवी स्थित रखती है, इसी प्रकार प्राण ही शरीरों के धारण करने वाला है। निदान, जो कारण कार्यरूप अर्थात् मूर्त्ति से रहित और मूर्त्तिमान या गैस द्रव और ठोस जगत् है, उस कारण का कारण रूप प्राण है।

मंत्र—अराइव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥६।२२॥

शब्दार्थ—अराइव=जैसे आरे। रथनाभौ=रथ की नाभि में लग होते हैं। प्राणे=प्राणों में। सर्वं=सब। प्रतिष्ठितम्=ठहरे हैं। ऋच=स्तुति। यजूंषि=कर्मकाण्ड। सामानि=उपासना। यज्ञ=देव पूजा, दान आदि। क्षत्रं=बल। च=और। ब्रह्म=ज्ञान।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—जिस प्रकार रथ के पहियों की नाभि में आरे लगे होते हैं, जो नाभि के बिना स्थित नहीं रह सकते। ऐसे ही सम्पूर्ण पदार्थ प्राणों से स्थित रहते हैं। ऋग्वेद जिससे स्तुति की जाती है, वह प्राणों से स्थित है। यजुर्वेद जिससे क्रिया होती है, वह भी प्राणों ही से स्थित है। सामवेद जिससे उपासना होती है, वह भी प्राणों के कारण से है। यज्ञादि कर्म भी प्राणों ही के द्वारा होते हैं। शरीर में जो बल स्थित है, वह भी प्राणों के ही कारण से है। निदान, बाह्य पदार्थों का ज्ञान जिससे ब्राह्मण बनते हैं, वह भी प्राण वायु के ही आधार से हैं। तात्पर्य यह है कि चाहे किसी प्रकार का काम या ज्ञान करना हो, वह प्राणधारी जीव ही कर सकता है प्राण से रहित जीवात्मा सब कामों से शून्य होता है। अर्थात् वह कुछ काम नहीं कर सकता। ज्ञान, बल, यज्ञ, स्तुति, कर्म, उपासना सब प्राणों से ही हो सकते हैं। अर्थात् जो जीव का लक्षण है कि वह ज्ञान तो स्वभाविक रखता है, अन्य कामों को यंत्रों से कर सकता है। जिस यंत्र से जीव काम करता है, वह प्राण ही है। अतएव प्रत्येक योनि में रहता हुआ जीव, प्राणी कहलाता है। जो कुछ वृद्धि, क्षय, उत्पत्ति, कमी इत्यादि विकार हैं, सब प्राणों के कारण से ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंत्र–प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे। तुभ्यं प्राणः ! प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥७।२३॥

शब्दार्थ—प्रजापतिः=सम्पूर्ण उत्पन्न हुए संसार के पालन कर्त्ता होने से प्रजापति प्राण का नाम है। चरसि=क्रिया करता है या रहता है। गर्भे=माता के गर्भ। त्वमेव=तू ही। प्रतिजायसे=तू ही संतान रूप में उत्पन्न होता है। तुभ्यं=तेरी रक्षार्थ। प्राण=हे प्राण। प्रजाः=संसार ! त्वं=तू भी। इमा=यह। बलिम्=ग्रास। हरन्ति=खाते हैं। यः=जो। प्राणे=पांच प्रकार के प्राणों रूप से अर्थात् प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, रूप से इस शरीर में। प्रतितिष्ठसि=स्थित होकर रह सकते हैं।

अर्थ—इस शरीर में जितने काम होते हैं, उन सबका कारण प्राण है। जीव तो केवल नियम में रखने वाला है, शेष सब क्रिया प्राणों से होती है। प्राण ही माता के उदर में जाकर लोथड़ा बनाते हैं, प्राण ही पुत्र पुत्री के रूप में उत्पन्न होकर बाहर दृष्टि पड़ते हैं। यह सब जगत् पशु और पक्षी तथा जीव जन्तु प्राणों की रक्षार्थ ही भोजन करते हैं, क्योंकि क्षुधा, तृषा प्राणों का ही धर्म है। यदि प्राणों को उसकी भोग वस्तु न दी जावे, तो भूख, प्यासमे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शरीर समाप्त हो सकता है, प्राण ही खाने वाला है।

मंत्र - देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा। ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥८।२४॥

शब्दार्थ—देवानाम्=देवतों में। असि=है। वह्नितमः= बहु प्रकार के कामों को चलाने वाला। पितॄणां=उत्पन्न करने वालों में। प्रथमा=सब से पहला। स्वधा=कल्याण कारक। ऋषिणां=ऋषियों में। चरितं=कर्म काण्ड। सत्यं= सत्य। अथवा अङ्गिरसाम=निश्चयात्मक ज्ञान वाले तपस्वी मनुष्यों में। असि=है।

अर्थ—जितने वसु, रुद्र, आदित्य देवता हैं, उन में तू सब से अधिक आवश्यक है। क्योंकि बिना तेरे उन की सत्ता से जीवों को लाभ नहीं पहुंच सकता। जितने देवता हम को लाभ पहुंचाते हैं, वह तब ही हो सकता है, जब कि शरीर में प्राण हों। क्योंकि प्राणों के बिना शरीर शिथिल रहता है। और संतान उत्पन्न करने वाला पुत्रों में भी तुही सब से प्रथम है। क्योंकि प्राण के बिना संतान उत्पन्न नहीं हो सकती। जिस में प्राण हैं, वही संतान पैदा कर सकता है। और ऋषियों में तप और कर्म किया जाता है, वह भी प्राणों के द्वारा ही होता है। सब से श्रेष्ठ कर्मयोग है, वह प्राणों के रोकने और नियम के अनुकूल चलाने के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बिना नहीं हो सकता। अर्थात् ऋषि प्राणों से ही बनते हैं और जो मनुष्य अंगिरा ऋषि पर प्रगट होने वाले अथर्ववेद से सत्य को निश्चय करते हैं, उस में भी यही कारण है।

प्रश्न—यहां सत्य के साथ अथर्ववेद का क्यों सम्बन्ध प्रकट किया ?

उत्तर—ऋग्वेद पदार्थों का डेफीनेशन अर्थात् लक्षण बताता है। जिसको जागृतावस्था श्रवण ज्ञानकांड और ब्रह्मचर्याश्रम के साथ उपमा दी गई है। और यजुर्वेद यज्ञ आदि कर्मों की विधि को बतलाया है। जिस से उस से स्वप्न अवस्था में कर्मकाण्ड और गृहस्थाश्रम के साथ अनुकूलता बतलाई है। वेद उन कर्मों के फलों का गान करता है, जिससे उसे सुषुप्ति अवस्था निधिध्यासन, उपासना कांड और वानप्रस्थ आश्रम से प्रगट किया गया। अथर्ववेद ने उनकी सब की रक्षा का विधान बताया है। जिस कारण तुरियावस्था साक्षात्कार विज्ञान कांड और सन्यास-आश्रम के साथ विदित किया गया है। साक्षात्कार विज्ञान सत्य है, इस कारण अथर्ववेद के सम्बन्ध से प्रकाश किया गया है।

मन्त्र—इन्द्रस्त्वं प्राण ! तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता। त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥ ९ । २९ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—इन्द्र=वर्षा करने वाला। त्वम्=तू ही। प्राण=हे प्राण। तेजसः=तेज शक्ति के कारण से। रुद्रः=रुलाने वाला। असि=है। परिरक्षिता=सब प्रकार रक्षा करने वाला तू है। जब तक प्राण हैं, तब तक कोई मर ही नहीं सकता। त्वम्=तू। अंतरिक्षे=आकाश में। चरसि=हरकत करता है। ज्योतिषांपतिः=चन्द्र, सूर्य, तारे इत्यादि जितने प्रकाशक पदार्थ हैं, उन सब का पति अर्थात् रक्षक सूर्यरूप तुही (परमात्मा) है।

अर्थ—संसार में जिस प्रकार की क्रिया (हरकत) पाई जाती है, वह सब प्राणों के कारण से है। प्राण दो प्रकार के हैं, एक सामान्य, दूसरे विशेष प्राण। सामान्य प्राण से सामान्य क्रिया का और विशेष प्राण से विशेष क्रिया का प्रकाश होता है। और वर्षा सामान्य प्राण से होती है, और उसके कारण का नाम इन्द्र रक्खा गया। इस कारण कहते हैं कि हे प्राण! वर्षा के हेतु तू इन्द्र है। और जितने जीव होते हैं, वह सब मृत्यु के कारण रुदन करते हैं। और मृत्यु प्राण के कारण से होती है। जब नियमित प्राण समाप्त हो जाते हैं, तब जीव शरीर से पृथक् हो जाता है, जिसका नाम मृत्यु है। और मौत के भय से मनुष्य रुदन करते हैं। इस हेतु हे प्राण! तू अपनी महान्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शक्ति रुदन करता है। और जब तक प्राण विद्यमान है, जीव शरीर को त्याग नहीं सकता। इस कारण जीव के रहने का स्थान जो शरीर है, उसका रक्षक भी हे प्राण! तू ही है। हे प्राण! तू आकाश में घूमने वाला और संपूर्ण सूर्य, चन्द्र, तारे इत्यादि पदार्थों का पति है। अर्थात सामान्य प्राण के द्वारा ही इन सब की सत्ता स्थित है।

मंत्र—यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण! ते प्रजाः। आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति।१०।२६

शब्दार्थ—यदा = जब। त्वम् = तू। अभिवर्षस्य = बादलों के जल को पृथ्वी पर डालता है। अथ = तत्र। इमाः = यह संसारिक मनुष्य। प्राण = हे प्राण। ते = तेरे। प्रजाः = प्रजा। आनन्दरूपाः = प्रसन्नता की दशा में आ कर। तिष्ठन्ति = स्थित होती है। कामायः = आवश्यकता के हेतु। अन्नम् = अन्न। भविष्यति = उत्पन्न हो जावेगा। इति = इस कारण।

अर्थ—हे प्राण! जब तू बादल से बादल को टकरा कर जल को पृथिवी पर गिराता है, तो उस समय संपूर्ण जीव चाहे मनुष्य हों, अथवा पशु अन्य जीव जन्तु पक्षी इत्यादि संपूर्ण तेरी प्रजा आनन्द स्वरूप हो जाती है। क्योंकि इनको अपने मार्ग पर पहुँचने के लिये जीवन की आव-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्यकता है । और जीवनार्थ भोजन की आवश्यकता है । और वर्षा से प्रत्येक जीव की खुराक उत्पन्न होती है । क्योंकि वह देखते हैं कि वर्षा हो गई, अब अन्न घास इत्यादि बहुत हो जावेंगे ।

प्रश्न—जो पशु वनस्पति इत्यादि खाते हैं, उनको तो वर्षा से खुराक पैदा होने की प्रसन्नता होती है । परन्तु मांस-भक्षक पशुओं को वर्षा से क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर—जब घास न हो, तो घास खाने वाले जीव जीवित ही न रहें, तो मांस भक्षक किसका मांस खावें । अतः सबका जीवन वर्षा पर निर्भर है । जिन देशों में घास उत्पन्न नहीं होती, वहां घास-भक्षक जीव भी नहीं होते । और जहां यह पशु न हों, तो वहां मांस-भक्षक किस प्रकार रह सकते हैं । अतः कुल संसार वर्षा से प्रसन्न होता है ।

मंत्र—व्रात्यस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातारिश्वनः ॥११।२७॥

शब्दार्थ—व्रात्य = संस्कार न करने योग्य । त्वम् = तुही । प्राण = हे प्राण । एक = बहुत से जीवों में एक आकार का । ऋषि = हर समय चलने वाला । अत्ता: = प्रत्येक वस्तु का भक्षक । विश्वस्य = सब जगत का । सत्पतिः = ठीक-ठीक रक्षक । वयम् = हम को । आद्यस्य = अन्न आदि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भोजन का। दातारः=दाता। पिता=उत्पादक। त्वम्=तुही। मातरिश्वनः=हे प्राण वायु।

अर्थ—हे प्राण! तू पृथिवी, जल, अग्नि से सूक्ष्म है और उनके गुण तुझ में आ नहीं सकते, इस हेतु संस्कारों की आवश्यकता से रहित है। और तू बहुत जीवों में एक ही रूप से विद्यमान है। अतः प्रत्येक समय क्रिया (हरकत) करने वाला और अपने साथ अन्य वस्तुओं को हरकत देने वाला है, और समस्त जगत् का रक्षक है। यदि तू न हो, तो कोई जीव जीवित नहीं कहला सकता। क्योंकि प्राण का नाम ही जीवन है। और सब इन्द्रियों का पोषक पिता हे प्राण वायु! तुही है।

प्रश्न—हम तो वायु को दुर्गंध तथा सुगन्ध युक्त देखते हैं, फिर वायु को संस्कार क्यों नहीं?

उत्तर—वायु, जल और मिट्टी के परमाणुओं को उठा कर चलती है, तो वह सुगन्ध तथा दुर्गंध उन परमाणुओं में है न कि वायु में। क्योंकि सूक्ष्म वायु के भीतर यह दोष नहीं आ सकता।

मन्त्र—या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि। या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरुमोत्क्रमीः॥ १२। २८॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—या=जो। ते=तेरा। तनुः=विस्तार फैला। वाचि=वाणी। प्रतिष्ठिता=तिष्ठित है। या=जो। श्रोते:= कानों में। चक्षुषि:=नेत्रों में हैं। या=जो। च=और। मनसि=मन में। सन्तता=मन की वृत्तियों में फैला हुआ है। शिवां=कल्याण-कारक। ताम्=उसको। कुरु= कर। मा=मत। उत्क्रमीः=वहां से पृथक्।

अर्थ—प्राण! तेरा जितना विस्तार वाणी में स्थित है, जितना श्रोत्र, नेत्र इत्यादि ज्ञानेन्द्रियों में फैला हुआ है और जितना मन की वृत्तियों में फैला हुआ है, इसी से हमारा कल्याण अर्थात् जीवन है; तू इसको स्थान से मत हटा। तात्पर्य यह, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में जो काम होता है, वह उसके भीतर रहने वाले प्राणों के द्वारा होता है। यदि प्राण उस स्थान से पृथक् हो जावें, तो इंद्रियां कुछ भी काम नहीं कर सकतीं। अतएव, तुम यदि इंद्रियों को विषयों से रोकना चाहते हो, तो प्राणों को रोको। क्योंकि प्राणों के रुकने से इंद्रियां रुक जाती हैं और प्राणों के रुकने से मन भी रुक जाता है। बिना प्राणों के रोकने के इनका रोकना कठिन ही नहीं किंतु असम्भव है।

मन्त्र—प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्। मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ॥ १३ । २९ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—प्राणस्य=प्राणों के। इदम्=यह। वशे=वश में है। सर्वम्=सब कुछ जो। त्रिदिवे=तीन प्रकार के लोकों में। यत्=जो। प्रतिष्ठितम्=जो स्थित हैं। माता इव=माता की भाँति। पुत्रान्=बेटों को। रक्षस्व=रक्षा कर। श्रीश्च=धर्म की शोभा। प्रज्ञाम्=ज्ञान या बुद्धि। विधेहि=धारण कर। न=हमको। इति=बस।

अर्थ—तीनों प्रकार के लोक अर्थात् कर्मयोनि, भोग-योनि, उभययोनि, ऊपर नीचे या मध्य में जो कुछ स्थित है, वह सब प्राणों के वश में है। किसी योनि को प्राण त्याग जावे, वह अपने काम से रुक जावेगी। रक्त-भक्षण सिंह तब ही तक जीवित है जब तक उस में प्राण हैं। यदि सिंह के शरीर से प्राण पृथक् हो जावें, तब अपना कार्य नहीं कर सकता। दुग्ध-दाता परोपकारी पशु, तब ही तक उपकार कर सकते हैं, जब तक उनमें प्राण हैं; यदि उनमें प्राण न हों, तो वह कर्म नहीं कर सकते। मनुष्य तब ही तक शुभाशुभ कर्म कर सकते हैं, जब तक उनमें प्राण हैं। जब प्राण निकल गये, तब बली, निर्बल, विद्वान् और अविद्वान्, नृप और अनाथ सब समान हो जाते हैं। प्राण तुम्हारे वश में नहीं, किन्तु तुम प्राणों के वश में हो। कोई बड़े से बड़ा राजा कितना ही प्रबंध क्यों न करे, कैसे ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भवन क्यों न बनावे, कितनी ही सेना क्यों न रक्खे, प्राणों के आवागमन को रोक नहीं सकता। जब चाहे, प्राण उसके ऐश्वर्य, शासन तथा बल की समाप्ति कर सकते हैं। प्राण इस प्रबन्ध में चलते हैं, जैसे इँजन के भीतर जो ड्रायवर होता है, इँजन की स्टीम उसके वश में होती है। और इँजन स्टीम के वश में होता है। और सब गाड़ियाँ इँजन के आधीन होती हैं। और गाड़ियों पर बैठने वाले, गाड़ियों के भीतर होते हैं। निदान, प्राणों के आधीन सब जगत है। और प्राण, प्राणों के प्राण परमात्मा के आधीन हैं, जिसका विचार वेदान्त-दर्शन और केनोपनिषद् में कर चुके हैं। अब दूसरा प्रश्न समाप्त हुआ।

अथ तृतीय प्रश्न

मंत्र—अथैनं कौशल्यश्चाऽश्वलायनः पप्रच्छ। भगवन् ! कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिन् शरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ॥१।३०॥

शब्दार्थ—अथ=उस वैदर्भि के प्रश्न के पश्चात्। एनम्=उस पिप्पलाद ऋषि को। कौशल्य आश्वलायन=

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कौशल्य नामी अश्वबल के पुत्र ने । पप्रच्छ=प्रश्न किया । भगवन्=हे गुरु । कुतः=कहां से । एष=यह । प्राणः=प्राण । जायते=उत्पन्न होते हैं । कथम्=कैसे । अथाति=आता है । अस्मिन् शरीरे=इस शरीर में । आत्मानम=अपने को । वा=या । प्रतिभज्य=विभाग करके । कथम्=कैसे । प्रतिष्ठते=स्थित रहता है । केन=जिसके । उत्क्रामते=शरीर को त्याग कर निकलता है । कथम=कैसे । बाह्यम्=बाहर की वस्तुओं को अभिधत्ते=धारण करता है । कथम्=कैसे । अध्यात्मम्=भीतरी वस्तुओं को । इति=यह ।

अर्थ—प्रथम तो आचार्य से यह प्रश्न किया कि इस प्रजा को कौन उत्पन्न करता है । फिर पूछा कि इनमें कौन इस शरीर को स्थित रखता और प्रकाश करता; और कौन सा सब से श्रेष्ठ देवता है । इसके पश्चात् अब प्रश्न हुआ कि यह प्राण जिसको महाश्रेष्ठ बताया है, किससे उत्पन्न होता है । और किस प्रकार इस शरीर में आता है और किस प्रकार प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान, हो कर किस किस स्थान में स्थित होता है । और किस की शक्ति से शरीर से निकलता है, और किस प्रकार बाह्य पदार्थों को धारण करता है, और किस प्रकार शरीर के भीतर की वस्तु को । इस प्रश्नोत्तर के क्रम से विदित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होता है कि प्राचीन काल के विद्वान् किस उत्तम विधि से ज्ञान के मार्ग को पूर्ण करते थे। जिस प्रकार वर्त्तमान काल में अज्ञानी मनुष्य ज्ञानी होने का अभिमान रखते हैं, यह दशा उस समय न थी।

मंत्र—तस्मै स होवाचातिप्रश्नान् पृच्छसि। ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि ॥२।२१॥

शब्दार्थ—तस्मै = उसको कौशल को। सः = वह। पिप्पलाद ऋषि। होवाच = कहने लगे। इति प्रश्नान् = बहुत कठिन प्रश्नों को। प्रच्छसि = तू पूछता है। ब्रह्मिष्ठ= तू ब्रह्मज्ञान की इच्छा रखने वाला। असि=है। तस्मात्= इस कारण से। तं = तुझ को। अहम् = मैं। ब्रवीमि = बताता हूं।

अर्थ—इन प्रश्नों को श्रवण कर कौशल से पिप्पलाद मुनि ने कहा कि तुम बहुत कठिन प्रश्नों को पूछते हो और तुम ब्रह्मज्ञान के पूर्ण अभिलाषी तथा अधिकारी हो। अर्थात् इन प्रश्नों को समझने योग्य हो। इस कारण इनका उत्तर तुमको देता हूं। जो जिसके योग्य हो, वह उसको देना आवश्यक है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि अधिकारी को ही उपदेश देना उचित है। जो योग्य नहीं, उसको उपदेश देने से कोई लाभ नहीं होता। क्योंकि ठीक आशय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को तो वह समझ नहीं सकता और जो अर्थ उस उपदेश से निकालना है, निकाल नहीं सकता, किंतु शब्दों को तोते की भांति उच्चारण करने लगता है। दूसरे मनुष्य उसे ज्ञानी समझते हैं, वास्तव में ज्ञानी न होने से वह उस कर्म से वञ्चित रहता है। क्योंकि जिस ज्ञान को निश्चय कर लिया हो, उसी को कर्म द्वारा करते हैं। क्योंकि बिना निश्चय ज्ञान के कभी कर्म नहीं होता। नित्यप्रति हम देखते हैं कि मनुष्य नित्य उपदेश श्रवण करते हैं, परन्तु कर्म उस के विरुद्ध करते हैं; अन्यों को वैराग्य का उपदेश करने वाले साधु, स्वयम् धन को जमा करते हैं। पिप्पलाद ऋषि यह उत्तर देते हैं।

मंत्र—आत्मन एष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनाऽऽयात्यस्मिन् शरीरे ॥३।३२॥

शब्दार्थ—आत्मनः=उस सर्व व्यापक परमात्मा से। एष=यह। प्राणः=प्राण। जायते=उत्पन्न होते हैं। यथा=जैसे। एष=इस। पुरुषे=पुरुष के होने से। छाया=छाया होता है, और नहीं होने से नहीं होता। तस्मिन्=इस प्राण में। एतत्=यह आत्मा। आततम्=व्यापक हो रहा है। मनोकृतेन=मन के किये हुए शुभाशुभ वासना से। आयति=आता है। अस्मिन्=इस। शरीरे=शरीर में।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—पिप्पलाद ऋषि कहते हैं कि इस प्राणका उत्पन्न करने वाला परमात्मा है। जिस प्रकार शरीर के होने से छाया होती है और शरीर के न होने से छाया नहीं होती। इसी प्रकार परमात्मा की शक्ति से यह प्राण उत्पन्न होता है, अर्थात परमात्मा प्रकृति में से प्राण बनाते हैं। जड़ प्रकृति के भीतर संयोग की शक्ति होने से प्राण बनने के नहीं। प्राणों के भीतर परमात्मा व्यापक हो रहा है। जहाँ सामान्य प्राण हैं; वहां परमात्मा। और जहां विशेष प्राण हैं, वहाँ जीवात्मा, परमात्मा दोनों विद्यमान हैं। और इस शरीर में प्राण मन की शुभाशुभ वासनाओं से आया है। दूसरे स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि उस परमात्मा से ही प्राण, मन और सम्पूर्ण इन्द्रियां उत्पन्न हुईं। बिना परमात्मा के प्राण कर्म नहीं कर सकता। सम्पूर्ण जगत में प्राण व्यापक है, क्योंकि वह जगत से सूक्ष्म है। परन्तु आत्मा में प्राण व्यापक नहीं, किन्तु प्राणों में आत्मा व्यापक है। और आत्मा ही प्राणों को विभाग करके इस शरीर की घटिका को चलाता है।

प्रश्न—किस प्रकार मानें कि प्राणों को आत्मा ने उत्पन्न किया ?

उत्तर—प्राण संयोग है, अर्थात अग्नि से मिश्रित वायु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। संयोग वस्तु बिना मिलाप के हो नहीं सकती। और योग (मिलाप) या तो परमाणु का स्वभाव स्वीकार किया जावे, अथवा नैमित्तिक यदि परमाणु का स्वभाव संयोग हो, तो कर्म के बिना हो नहीं सकता। अतः परमाणु स्वाभाविक ही संयोग अवस्था में होने वाले होंगे, अर्थात् स्वयम् क्रिया (हरकत) करते होंगे। जब सब परमाणु गतिमान होंगे, तो उनकी शक्ति परमाणु होने से समान होगी, जिससे क्रिया (हरकत) सम होगी। हरकत के सम होने से उन के मध्य जो अन्तर था, वह कभी दूर नहीं हो सकता; जिससे वह मिल नहीं सकते। यदि वह निष्क्रिया हों;तो क्रिया(हरकत)के न होने से अन्तर दूर हो नहीं सकता। यदि संयोग को नैमित्तिक गुण स्वीकार किया जावे,तो उस का कारण परमाणुओं से पृथक् मानना पड़ेगा, जो आत्मा के अतिरिक्त दूसरा हो नहीं सकता। क्योंकि क्रिया (हरकत) दो प्रकार से दी जाती है; एक भीतर से, दूसरी बाहर से। प्राण भीतर से हरकत देते हैं। इञ्जन के भीतर स्टीम भीतर से हरकत देती है। गाड़ी, घोड़े, बैल, ऊंट बाहर से हरकत देते हैं। अतः परमाणुओं के सूक्ष्म होने से बाहर से हरकत दी नहीं जा सकती। अतः परमाणुओं को भीतर से ही हरकत दे सकते हैं। जो परमाणु के भीतर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी प्रवेश हो जावे, वही उसे हरकत दे सकता है; अतः उसका नाम आत्मा है ।

प्रश्न—बहुत से मनुष्य कहते हैं कि परमात्मा है, तो हमारे हाथ नीचे करदे और मेज पर से पैंसल उठावे ।

उत्तर—वह मनुष्य मूर्खों को धोखा देते हैं, क्योंकि परमात्मा उनका दास नहीं जो उनकी आज्ञा का पालन करे । यदि कोई कहे कि हमारा भारतवर्ष में गवर्नर जनरल है, तो हमारे घर में झाड़ू देवे । यदि हमारे घर में झाड़ू न दे, तो हम उसकी सत्ता से ही इनकार कर देगें । जिस प्रकार गवर्नर जनरल झाड़ू देने को नहीं, किन्तु प्रबन्ध करने के वास्ते है । इसी प्रकार परमात्मा जगत् का प्रबंध-कर्त्ता है, न कि मूर्खों की सेवा (गुलामी) ।

प्रश्न—बहुत से मनुष्य कहते हैं कि ईश्वर के मानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—ईश्वर के मानने वालों में सच्ची शांति, आत्मिक बल, परोकार का भाव होता है । और जो ईश्वर-विश्वासी हैं, वह निराश्रय होने से शान्त रहते हैं ।

मन्त्र—यथा सम्राडेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते । एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानाधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष-प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेव सन्निधत्ते॥४।२३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—यथा=जैसे । सम्राट्=चक्रवर्ती राजा। अधिकृतान्=स्वाधीन राजाओं को। अभियुक्तान=नियत करता है। एतान्=इन। ग्रामान्=इन गावों को। एतान् ग्रामानधितिष्ठस्व=नियम पूर्वक ठहर कर प्रबन्ध करो। इति=ऐसे ही। एवयेन=इस शरीर में। एष=यह। प्राणः= प्राण। इतरान्=दूसरे। प्राणान्=प्राणों। पृथक्=पृथक्। एव=है। सन्निधत्ते= स्थित करता है।

अर्थ—जिस प्रकार गवर्नमेंट या चक्रवर्ती राजा अपने आधीन राज, या सूबों और रजवाड़ों की सीमा नियत करके उससे प्रबन्ध का काम लेता है। प्रत्येक थानेदार अपने थाना की सीमा के भीतर और तहसील-दार तहसील की सीमा में, डिप्टी कमिश्नर प्रांत की सीमा में, लफटण्ट गवर्नर देश की सीमा में रह कर सब प्रबन्ध करते हैं; और अपनी पदवी की आज्ञा के अनुकूल ही काम करते हैं। इसी प्रकार सामान्य प्राण शरीर के भीतर अनेक स्थान में अनेक प्राणों को स्थित करके उन से शरीर के प्रबंध का काम लेते हैं। प्रत्येक अपनी अपनी सीमा में ही काम करता है। सामान्य प्राण सारे संसार में चक्रवर्ती राजा की भाँति काम करता है और विशेष प्राण अपने अपने स्थान के भीतर अपने नियमित स्थान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर ही काम करते हैं। तात्पर्य यह है कि आँख, नाक, कान, वाणी, त्वचा, हाथ, पाँव इत्यादि जितनी इन्द्रियाँ काम कर रही हैं, उन सब के भीतर चलाने वाले प्राण ही काम कर रहे हैं। बिना प्राणों के इंद्रियाँ स्वयम् कुछ काम नहीं कर सकतीं; क्योंकि वह जड़ हैं। जिस प्रकार इंजन में स्टीम को ड्रायवर कायम करता है और प्राण इंद्रियों को हरकत देते हैं, उससे सब काम बाहर भीतर के होते हैं।

मन्त्र—पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः। एषह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥ ५ ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—पायुपस्थ=उपस्थ और लिङ्गेन्द्रिय। अपानम्=अपान प्राण रहता है। चक्षुः=नेत्र में। श्रोत्रे=कान। मुखनासिकाभ्यां=मुख और नाक में। प्राणः=प्राण। स्वयं=स्वयम्। प्रातिष्ठते= स्थित होता है। मध्येत= मध्य में। समान=समान वायु रहता है। एष=यह। हि= निश्चय करके। एतत्=इसमें। हुतम्=भोग्य। अन्नम्= अन्न। समुत्=सम भाग। नयति=पहुँचाता है। तस्मात्= इस कारण से। एतत्=यह। सप्त=सात। अर्चिषः= प्रकाशक। भवन्ति=होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—शरीर में गुदा तथा मूत्र-स्थान में अपान वायु होती है, जो मल मूत्र आदि को नीचे की ओर निकालती है। और नेत्र नासिका, श्रोत्र, मुख में स्वयं, प्राण भीतर से बाहर जाता और बाहर से भीतर आता अर्थात् प्राण के आवागमन का यह मार्ग है। और उदर के समीप इनके मध्य समान वायु रहती है। जिससे खाया हुआ भोजन रस बनकर समभाग कुल इन्द्रियों को विभाजित होता है। जो जिस इन्द्रिय का भाग है, उसको वैसा ही समान वायु के द्वारा मिलता है। उसका नाम समान इसी कारण से है कि वह सब को समान दृष्टि से रस पहुँचाती है। जिस प्रकार सप्तमार्ग जल के निकलने के होते हैं, इसी प्रकार प्राण वायु के निकास के सप्त मार्ग हैं। दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, एक मुख इन सात मार्गों से प्राण शरीर में प्रवेश होता और निकलता है।

मंत्र—हृदि ह्येष आत्मा अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥ ६ । ३६ ॥

शब्दार्थ—हृदि = हृदय में। हि = निश्चय करके। एष = यह। आत्मा = के देखने का स्थान अर्थात् नाभि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कमल है। अनु = इस नाभि कमल में। एतत् = उन। एकशतम् = एक सौ एक नाड़ीयों का सम्बन्ध है। तासाम= उन नाड़ियों का। शतं = सौ सौ। एकैकस्यां = फिर उन में से एक-एक का। द्वासप्ततिर्द्वासप्तति = बहत्तर-बहत्तर। प्रतिशाखा। नाड़ीसहस्राणि = उसकी सहस्रों प्रति शाखा। भवंति = होती हैं। आसु = नाड़ियों में। व्यानः = व्यान वायु। चरति = हरकत करता है।

अर्थ—शरीर के भीतर हृदय आकाश में जहां आत्मा का दर्शन होता है, वहां नाड़ियों का एक चक्कर होता है, जिसमें १०१ नाड़ी हैं। उन एक सौ एक नाड़ियों के आगे-आगे सौ-सौ शाखें हैं। जो दश सहस्र एक सौ हैं और उनकी ७२, ७२ शाखें हैं, फिर उनकी १०००, १००० शाखें हैं। इन कुल ७२७२१०२०१ शाखा में व्यान वायु चक्कर खाता हुआ इस शरीर की रक्षा करता है।

प्रश्न—यहां शरीर में इतनी नाड़ियां बताईं, इनका प्रमाण क्या? इनको किसी ने देखा है? इनकी गणना भी कठिन है।

उत्तर—शरीर के भीतर का ठीक हाल योगियों को मालूम होता है और इन उपनिषदों के बनाने वाले योगी हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—यहां आत्मा को शरीर के एक स्थान में माना है और छान्दोग्योपनिषद् में जब शरीर के एक भाग को जीव छोड़ता है, तब वह सूख जाता है। जब दूसरे को छोड़ देता है, तब वह सूख जाता है। जब तीसरे को छोड़ देता है, तब तीसरा सूख जाता है। जब सब शरीर को छोड़ता है, तब सम्पूर्ण शरीर सूख जाता है। जीव के पृथक् होजाने से यह शरीर मरता है, जीव नहीं मरता। जिससे जीव शरीर के प्रत्येक भाग में होना पाया जाता है। इन दोनों में कौन सी बात सत्य है ?

उत्तर—आत्मा शब्द ही से उसका शरीर में व्यापक होना विदित होता है, परन्तु 'रोहे' वह स्थान है जहां पर मन के शुद्ध होने पर उसको देख सकते हैं। इस विचार से उसको हृदय के अंगुष्ठ समान स्थान में बताया है। यद्यपि पृथिवी के नीचे प्रत्येक स्थान में जल है, परन्तु लाने को कुवां, सरिता, नहर इत्यादि ही बताते हैं, क्योंकि और स्थान से मिल नहीं सकता। सूर्य का प्रतिबिम्ब कुल देश में पड़ता है, परन्तु देखने को शुद्ध दर्पण तथा जल ही बताते हैं।

मंत्र—अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति। पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्य लोकम्॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—अथ = इन नाड़ियों में से। एक या = एक में से। ऊर्ध्व = जो तालु से ऊपर की है। उदानः = उदान वायु रहती है। पुण्येन = अच्छे कर्मों से। पुण्य लोकम् = जिस शरीर में शुभ कर्मों का फल मिलता है, अर्थात् विद्वान् कर्मकाण्डी के शरीर में या योगियों के घर में। नयति = ले जाता है। पापेन = पाप करने। पापम् = पाप का फल भोगने वाली पशु आदि की भोग योनियों में। उभाभ्याम् = यदि पाप अर्थात् शुभाशुभ कर्म दोनों समान हों। एव = इसी प्रकार। मनुष्य लोकम् = मनुष्य के शरीर को प्राप्त करता है।

अर्थ—इन एक सौ एक बड़ी नाड़ियों में से एक नाड़ी के भीतर उदान वायु चलता है अर्थात् जो नाड़ी नाभि-चक्कर से सीधी सर की ओर जाती है जिसको सुखमना नाड़ी के नाम से योगी जन वर्णन करते हैं। उसके द्वारा प्राण जिसका नाम उदान है चलता है और सूक्ष्म शरीर को लेकर शरीर से निकलता है। और इस पर आरूढ़ होकर सूक्ष्म शरीर-सहित जीवात्मा, परमात्मा के नियमानुकूल जिस प्रकार के कर्म होते हैं उसी प्रकार के शरीर को प्राप्त कर लेता है। जिस मनुष्य ने पुण्य अधिक किये हैं और पाप कम, उसको देवताओं के घर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ले जाता है। और जिसने पाप अधिक किये हैं, उसको पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि की भोग योनि में ले जाता है। और जिसके दोनों समान हैं, उसको साधारण मनुष्यों का जन्म मिलता है। इस स्थान पर ऋषि कर्मों का फल भी प्रकाशित करते हैं और विधान भी बताते हैं।

प्रश्न—क्या शुभ कर्मकारक देवता नहीं होते? क्योंकि बहुत से मनुष्य बताते हैं कि जो मनुष्य परोपकार और यज्ञादि शुभ कर्म करते हैं वह स्वर्ग में देवता योनि को प्राप्त होते हैं।

उत्तर—देवता दो प्रकार के हैं, एक तो जड़, दूसरे चेतन्य देवता। जड़ देवताओं की योनि में तो जीवात्मा जा ही नहीं सकता, केवल चेतन्य देवताओं के शरीर में ही जायगा। क्योंकि चेतन्य का जड़ हो जाना अपने स्वाभाविक गुण का नाश करना है, जो असम्भव है।

प्रश्न—जड़ देवता कौन से हैं और चेतन्य देवता कौन से हैं?

उत्तर—वसु, रुद्र, और आदित्य आदि २३ देवता प्रसिद्ध ही जड़ हैं, उनके अतिरिक्त और भी कोई हों। और जितने ज्ञानी पुरुष चेतन्य देवता हैं, जिनके अर्थ विद्वान ही देवता हैं। शतपथ ब्राह्मण ने बताया है महा-भाष्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कार पातंजलि और उसके टीकाकार कैयट ने भी स्वीकार किया है कि चेतन्य देवता सत्यासत्य के ज्ञाता पंडित हैं। और शंकराचार्य आदि ने बृहदारण्यकोपनिषद् के भाष्य में लिखा है।

प्रश्न—जड़ और चेतन्य दो प्रकार के देवता क्यों स्वीकार करें ?

उत्तर—देवता बनाने वाला सतोगुण है, जिन सांसारिक वस्तुओं में सतोगुण के काम अथवा सतोगुण विशेष हों, वह जड़ देवता हैं। और जिन जीवों का मन सतोगुणी हो, वह चेतन्य देवता हैं।

प्रश्न—यदि महाभाष्यादि में विद्वानों को देवता स्वीकार किया गया हो, तो भी वह अप्रसिद्ध देवता हैं। वास्तव में इन्द्रादि ही देवता हैं। अतएव, प्रसिद्ध अर्थ को ही लेना उचित है।

उत्तर—वास्तव में विद्वान् देवता प्रसिद्ध अर्थ है, इंद्रादि शब्द प्रसिद्ध हैं। जब सूर्यादि जड़ देवतों का नाम लेते हैं, तो यह प्रसिद्ध तो होता है, परन्तु यह कोई योनि नहीं। कोई मनुष्य मर कर सूर्य नहीं हो सकता और न चन्द्र बन सकता है और न रुद्र बन सकता है, न वसु क्योंकि वह नियमित हैं, अधिक हो ही नहीं सकते। इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिये, वह देवता जो मर कर होते हैं, वह तो विद्वानों का ही नाम है।

मंत्र—आदित्यो हवै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः। पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरायदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥ ८। ३७ ॥

शब्दार्थ—आदित्य = सूर्य। हवै = निश्चय करके बाह्य प्राण = शरीर से बाहर जो सामान्य प्राण हैं। उदेति = प्रकाशकारक। एष = यह सूर्य। हि = निश्चय कर के। एनम् = इसको। चाक्षुषम् प्राणम् = नेत्र के साथ सम्बन्ध रखनेवाले प्राण को। अनुगृह्णानः = प्राप्त करने के पश्चात ही। पृथिव्याम् = पृथिवी में। यः जो देवता = प्रकाशकारक हैं। सः = वह। ऐषः = इस। पुरुषस्य = इस शरीर धारी जीव का। अपमानम् = अपान को। अवष्टभ्य = रोक कर। अन्तरा = शरीर के मध्य। यत = जो। आकाशः = आकाश है। सः = वह। समानः = समान है। वायुः = वायु। व्यानः = व्यान है।

अर्थ—प्रथम भीतरी प्राणों का वर्णन करके अब बाह्य प्राणों का जिसे भीतरी प्राण सहायता पाकर ही काम कर सकते हैं, वर्णन करते हैं। सूर्य के प्रकाश से किरणों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के द्वारा नेत्र के भीतर रहने वाले प्राणों को सहायता मिले विना, प्रकाश के नेत्र नहीं देख सकते। पृथिवी में रहनेवाले प्राणों से अपान वायु को सहायता मिलती है, जिससे सहायता पाकर अपानमल, मूत्र को पृथिवी की ओर को निकालते हैं। जहां मल, मूत्र के निकलने में किसी प्रकार का अन्तर आ जावे, वहीं आरोग्यता विगड़ जाती है। समान वायु को आकाश से सहायता मिलती है। यदि भीतर ठसाठस भर दिया जावे और उदर में स्थान समान वायु को न रहे तो भी आरोग्यता के विगड़ने का वैसा ही संदेह है। और व्यान वायु जो इस शरीर को चलाती है, उसको उठा ले जाने वाली वायु से सहायता मिलती है, अर्थात् कोई इन्द्रिय अथवा प्राण बाहर की सहायता के विना जीवित नहीं रह सकते। जिस प्राण की सहायता में त्रुटि हो जावे, उसके कामों में अन्तर आ जाता है।

मंत्र—तेजो हवै उदानस्तस्मादु पशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ॥ ९ । ३८ ॥

शब्दार्थ—तेजः = सर्व व्यापक अग्नि। हवै = निश्चय करके। उदानः = उदान वायु से। तस्मात् = इस कारण से। उपशान्त तेजाः = जब भीतर की सामान्य अग्नि शांत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो जावे। पुनर्भवम्=अन्य जन्म में प्राप्त होने वाले शरीर को। इन्द्रियैः=नेत्र, कान इत्यादि। मनसि=मन के साथ। सम्पद्यमानैः=प्रविष्ट होकर।

अर्थ—सारे जगत में जो व्यापक गर्मी है, वह गले में रहने वाली उदान वायु की सहायक है। और उस गरमी से सहायता पाता हुआ उदान ही जीवों को जीवित रखता है जब तक बाहर से गरमी पहुंचती रहती है, तब तक मनुष्य जीवित रहता है! यदि बाहर से ऊष्ण वायु के स्थान में जल के परमाणुओं से संयुक्त वायु बराबर पहुंचे, तो उदान की सहायता बन्द हो जाती है। उस दशा में उदान जीव को इन्द्रियों और मन के सहित लेकर दूसरे शरीर में चला जाता है। और यह प्रसिद्ध बात है कि बाहर से जो वायु भीतर जाती है, उसमें केवल अग्नि और वायु सम्मिलित होती है और वह भीतर से जल के परमाणुओं को लेकर बाहर मिलती है, अग्नि से मिली हुई वायु में तो पाचक-शक्ति होती है, परन्तु जिस वायु में जल और पृथिवी के परमाणु भी सम्मिलित हो गये हैं, उसमें पाचक-शक्ति नहीं रहती, क्योंकि जितना जल और पृथिवी के परमाणुओं को प्राण में रहने वाली वायु उठा सकती थी, वह उसके पास पहले विद्यमान है, इस कारण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिस मकान में स्थान कम और मनुष्य अधिक हों अथवा भूमि जलवाली होने से भीतर जानेवाली वायु अग्नि के परमाणुओं को त्याग, जल के परमाणु को लेकर जावे, वहां अवश्य ही आरोग्यता बिगड़ जावेगी। जिन मकानों में अधिक काल से अग्नि न जली हो या सूर्य का प्रकाश न जाता हो, तो वह भी आरोग्यता को निर्बल करते हैं, अर्थात् वह मकान भी हानिकारक होते हैं।

प्रश्न—जब जीव शरीर को त्याग कर जाता है, उस के लिये कौन से पदार्थ जाते हैं?

उत्तर—सूक्ष्म शरीर कर्मों के संस्कारों सहित जीव के साथ जाता है और उन संस्कारों के कारण से कर्म का फल मिलता है।

मन्त्र—यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसायुक्त ! सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति ॥ १० । ३९ ॥

शब्दार्थ—यच्चित्तः = कर्मों के संस्कार से जिस जन्म के योग्य चित्त में वासना होती है। तेन = उससे। एष = यह। प्राणम् = प्राण। आयाति = शरीर को ग्रहण करता है। प्राणः = प्राण। तेजः = बाह्य तेज से सहायता प्राप्त युक्त उदान के साथ। युक्तः = मिलकर सहात्मना =

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवात्मा के साथ। यथा = जैसा। संकल्पितं = कर्मों के कारण जैसा शरीर बना है। लोकम् = उस शरीर को। नयति = प्राप्त होता है।

अर्थ—जो कुछ मनुष्य कर्म करता है, उसके दो प्रकार के अंकुर होते हैं। एक का नाम अवरिष्ट और दूसरे का नाम संस्कार, जिस प्रकार का अवरिष्ट होता है, उस प्रकार की वासना अंतिम आयु में जीव के मन में उत्पन्न होती है। और जिस प्रकार की वासना होती है, उस प्रकार का शरीर परमात्मा के नियम से बनता है। और जिस किसी मनुष्य या पशु से कर्म का सम्बन्ध होता है, वहीं पर जाकर जीव कर्मों का फल भोगता है। अतः कर्मों के अनुसार जो शरीर परमात्मा ने बना दिया है, उसमें उदान वायु सूक्ष्म शरीर और आत्मा को ले जा कर पहुंचा देती है। इस लिये प्रायः विद्वानों का विचार है कि जब किसी मनुष्य को मरना होता है, उस से षट् मास पूर्व उसकी प्रकृति परिवर्तन हो जाती है। अर्थात् जैसा फल उसको मिलने वाला होता है, वैसे ही उसके विचार हो जाते हैं।

मंत्र—य एवं विद्वान् प्राणम् वेद। न हास्य प्रजाहीयतेऽमृतो भवति तदेव श्लोक ॥ ११४०॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—यः = जो । एवम् = इस प्रकार । विद्वान् = ज्ञाता । प्राणं = प्राणों । वेद = जानता है । न = नहीं । हास्य = उस विद्वान् की । प्रजा = संतान । हीयते = नाश होती है अर्थात् उसके संतान (कुल) का नाश नहीं होता । अमृतः = नाश रहित । भवति = होता है । तत् = उसके अर्थ । एष = यह । श्लोकः = श्लोक वर्णन किया है ।

अर्थ—जो विद्वान् इस प्राण की विद्या को ठीक प्रकार समझ कर वैसा ही आचरण करता है अर्थात् दिन में और काम नहीं करता और कोई भी काम वेद के विरुद्ध नहीं करता । सत्य बोलता, विद्याभ्यास करता और उपकार में लगा रहता है, उसके कुल अर्थात् संतान का नाश नहीं होता । क्योंकि संतान दो प्रकार की होती है, एक जन्म से, जैसे बेटे पोते आदि, दूसरे शिक्षा और उपदेश से । इन दोनों प्रकार की संतान में से उसका कोई न कोई उत्तराधिकारी बना ही रहता है । चाहे उसके शिष्य संसार में शिक्षा दे रहे हों, चाहे उसकी संतान कुल वृद्धि कर रही हो । अर्थात् नाम को स्थिर रखने के लिये श्रम करने में उनको चाहिये कि विद्वान् बनकर जीवन व्यतीत करें । आज गौतम जीवित है, क्योंकि करोड़ों न्याय के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जानने और मानने वाले उसकी संतान हैं। कणादि जीवित हैं, कपिल और पातञ्जलि जीवित हैं, जैमिनि और व्यास नहीं मरे, क्योंकि उनका काम और नाम दोनों शेष हैं, अतः वह अमर हैं।

मंत्र—उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वञ्चैव पञ्चधा। अध्यात्मंचैव प्राणस्य विज्ञायाऽमृतमश्नुते, विज्ञायाऽमृतमश्नुत इति ॥ १२ । ४१ ॥

शब्दार्थ—उत्पत्तिं=परमात्मा के द्वारा प्राण की उत्पत्ति। आयतम्=शरीर में आने को। स्थानम्=प्राणों के रहने के जो स्थान बताये हैं। विभुतम्=सामान्य प्राण के सर्व व्यापक होने को। च एव=और भी। पंचधा=शरीर के भीतर पांच प्रकार के विभाग को अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान को। अध्यातमम्=शरीर के भीतर प्राणों के काम को। च एव=और भी व्याख्या को। विज्ञायः=ठीक-ठीक जानकर। अमृतम्=मोक्ष को। अश्नुते=भोग करता है अर्थात् दुखों से छूटकर आनन्द को प्राप्त करना। दो बार प्रश्न के समाप्ति को लिखा।

अर्थ—अन्त में पिप्पलाद ऋषि इस फल को बताते हैं जो इस प्राण-विद्या को इस प्रकार जानता है कि प्रथम प्राण कहां से उत्पन्न होते हैं, अर्थात् प्राणों की उत्पत्ति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का कारण परमात्मा है। परमात्मा के अतिरिक्त और कोई शक्ति प्राणों को उत्पन्न नहीं कर सकती, क्योंकि औरों को स्वयम् प्राणों की आवश्यकता है। यद्यपि चेतन्य जीवात्मा काम करने की शक्ति है, परन्तु वह प्राणों के द्वारा इन्द्रियों को हरकत देकर ही काम कर सकती है। दूसरे प्राण इस शरीर में क्योंकर आता है, अर्थात कर्म-फल की या वासना की डोर से बंधा हुआ। जिससे पता लगता है कि यह शरीर एक प्रकार का फल है; इसमें कर्मों का फल भोगने को ही जीव आता है। जिस प्रकार अप-राधी बंधुओं की कारागार की रक्षार्थ प्रबन्ध की कोई आवश्यकता नहीं, किंतु उनको कारागार से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि हम इस बात को ठीक ठीक समझ जावें, तो संसार में से किसी दशा में हमें दुख और असफलता न हो और प्राणों का स्थान अर्थात शरीर के भाग में कौन सा प्राण रहता है। चतुर्थ यह अन्तर एक तो सामान्य प्राण हैं, जो सारे संसार में व्यापक जिनसे परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नियम चलाता है। दूसरे विशेष प्राण जो इस शरीर के भीतर अपने अपने स्थान पर स्थित हैं। और उन प्राणों की तकसीम जो पांच प्रकार से की गई है, उनके पृथक पृथक् काम।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तात्पर्य यह कि प्राण शरीर के भीतर तो जीव के विशेष प्राण द्वारा काम करते हैं और बाहर सर्वव्यापक परमात्मा के दिये हुए सामान्य प्राण (हरकत इंतिज़ामी) से काम करते हैं अर्थात् सामान्य प्राण के द्वारा निर्जीव पदार्थों में षट् विकार उत्पन्न होते हैं। और जीव अर्थात् चेतन्य सृष्टि के भीतर विशेष प्राण से तीन प्रकार के प्राण (हरकत) अर्थात् करना, न करना, उलटा करना है। चेतन्य और जड़-सृष्टि का भेद जानने के अर्थ प्राण-विद्या अर्थात् सामान्य और विशेष प्राणों की विद्या जानना अत्यावश्यक है। और जो इन भेदों को ठीक प्रकार जान जाते हैं, वह मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। प्राण-विद्या को ठीक-जानने से परमात्मा का ज्ञान हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथ चतुर्थ प्रश्न

मंत्र—अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ। भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति कस्यैतत् सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति॥ १। ४२॥

शब्दार्थ—अथः=कौशल्य के प्रश्न का उत्तर सुनने के पश्चात्। ह=प्रथम कथा को चलाने के लिये। एनं=उस पिप्लाद ऋषि को। सौर्यायणी=सूर्य के पोते की लड़की। गार्ग्य=गर्ग गोत्र में उत्पन्न हुआ। पप्रच्छ=पूछा। भगवन्=हे गुरु महाराज। एतस्मिन्न पुरुषे=इस शरीर के भीतर अर्थात् प्राणेन्द्रिय और मनादि में। कानि=कौन। स्वपन्ति=सोते हैं। कानि=कौन। अस्मिन्=इस शरीर के भीतर वाले प्राणेन्द्रियों में। जाग्रति=जागता है।। कुत्र=कहां। एष=यह। देवः=देवता। स्वप्नान=स्वप्न को। पश्यति=देखता है। कस्य=किसको। एतत=यह। सुखं=सुख। भवति=होता है। कस्मिन=किसमें। नो=और। सर्वे=सब। साम्प्रतिष्ठिता=ठीक प्रकार स्थित। भवन्ति=होते हैं। इति=यह प्रश्न है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—जब पिप्लाद ऋषि कौशल्य का उत्तर दे चुके, तब सूर्य नामी ऋषि के पोते की लड़की ने जो गर्ग-गोत्र में उत्पन्न हुई थी यह प्रश्न किया—हे गुरु महाराज ! इस शरीर के भीतर जो प्राणेन्द्रिय मन इत्यादि है, कौन सोता है, कौन जागता है और कौन स्वप्न को देखता है, कौन इसमें सुख को भोगता है और किसमें सब ठीक प्रकार ठहरते हैं; अर्थात् पाँच प्रश्न किये प्रथम इस शरीर में कौन सोता है, द्वितीय कौन जागता है, तृतीय स्वप्न कौन देखता है, चतुर्थ सुख कौन भोगता है, पंचम किसमें यह सब इन्द्रिय मन इत्यादि ठीक ठीक स्थित होते हैं। ऋषि उत्तर देते हैं।

मंत्र—तस्मै स होवाच। यथा गार्ग्य ! मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतास्मिंस्तेजोमण्डल एकी भवन्ति। ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं हवै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकी भवति। तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नाऽऽदत्ते नाऽऽनन्दयते न विसृजते न नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥ २ । ४३ ॥

शब्दार्थ—तस्मै=उस गार्गी को। सः=वह पिप्लाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऋषि । ह उवाच=यह कहने लगे । यथा=जैसे । गार्ग्य=हे गार्गी । मरीचयो=सूर्य की किरणें । अर्कस्य=सूर्य के । अस्तंगच्छत=छुप जाने पर । सर्वा=वह सब किरणें । एतस्मिन्न=उस । तेजो मण्डल=तेज के भंडार सूर्य में । एकः=एंकत्रित । भवन्ति=होती है । ताः=वह किरणें । पुनः पुनः=बार बार । उदत्यातः=सूर्य के उदय होने के साथ ही । प्रचरन्ति=फैलती है । एवम्=इस प्रकार । हवै=निश्चय करके । तत्=वह । सर्वम्=सब इन्द्रियां । परे=अपने से सूक्ष्म । देवः=देवता । मनसि=मन में । एकः=एकत्रित । भवति=होती हैं । तेन=इस कारण से । तर्हि=उस समय । एष=यह । पुरुषः=जीवात्मा । न=नहीं शृणोति=सुनता । न=नहीं । पश्यति=देखता । न=नहीं । जिघ्रति=सूँघना । न=नहीं । रसयते=रस लेना । न=नहीं । स्पृशते=स्पर्श करना । न=नहीं । अभिवदेत=बात चीत करना है । नादत्ते=न ग्रहण करता है । नानन्दयते=न आनन्द को प्राप्त होता है । न विसृजते=न छोड़ता है । न=नहीं । यायते=पांव से चलना । स्वपित=सोता है । इति=इस दशा में । आचक्षते=कहते हैं जागने वाले मनुष्य ।

अर्थ—गार्गी के प्रश्न के उत्तर में पिप्लाद ऋषि ने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहा—हे गार्गी ! जिस प्रकार सूर्य की किरणें सूर्य के अस्त होने के समय इसी तेज के भंडार में एकत्रित हो जाती हैं, सूर्य के उदय होने पर फैल जाती हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण इन्द्रियां विषयों के प्रकाश करने वाले ज्ञान के कारण मन में एकत्रित हो जाती हैं। इसी कारण से इस समय यह मनुष्य न तो किसी बाह्य शब्द को सुनता है और न बाह्य रूप को देखता है और न बाहरी गंध को सूँघता है और न रसना इन्द्रिय से किसी वस्तु का रस लेता है, न किसी वस्तु को स्पर्श करता है और न वाणी से कुछ कहता है और न विषय-भोग करता है और न शौच जाता और न हाथ से पकड़ता और न पांव से चलता है। उस दशा को देखने वाले मनुष्य कहते हैं कि यह सो रहा है।

प्रश्न—क्या इन्द्रियों का प्रकाशक मन है, या मन की प्रकाशक इन्द्रियां हैं ? क्योंकि विषय बाहर से मन पर जाते हैं, यदि नेत्र बन्द हों, तो रूप का ज्ञान मन को नहीं हो सकता।

उत्तर—यदि मन का सम्बन्ध न हो, तो नेत्र प्रकाश की दशा में भी नहीं देख सकते। जैसाकि प्रायः देखा जाता है कि चित्त के साथ सम्बन्ध न होने से जब पूछते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं देखा, तो उत्तर मिलता है कि मेरा चित्त इस ओर नहीं था। क्योंकि इन्द्रियों में जो ज्ञान की शक्ति आती है, वह भीतर रहने वाले आत्मा से आती है। और इंद्रियां बिना मन के सम्बन्ध से आत्मा से सम्बन्ध नहीं कर सकतीं। अतः इन्द्रियों का प्रकाशक मन है, मन की प्रकाश करने वाली इन्द्रियां नहीं। बाहर तो जानने योग्य वस्तु हैं, जानने वाली शक्ति बाहर नहीं। वस्तुओं के भीतर मालूम होने का स्वभाव है और मालूम कराने का स्वभाव आत्मा में है। अतएव प्रकाशक मन है, इन्द्रियां नहीं।

प्रश्न—निद्रा किस प्रकार से आती है?

उत्तर—जब मन और इन्द्रियों के मध्य तमोगुण का परदा आ जाता है, तब बाहर के विषयों का प्रतिबिम्ब मन पर नहीं पड़ता, जिससे मन को किसी वस्तु का ज्ञान नहीं रहता।

प्रश्न—क्या सोने की दशा में जीव बाहर के ज्ञान से शून्य होता है, अथवा नितान्त ज्ञान का अभाव हो जाता है?

उत्तर—ज्ञान जीव का स्वभाविक धर्म है, इस कारण उसका अभाव तो हो नहीं सकता। केवल नैमित्तिक ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो मन और इन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न होता है, मन और इन्द्रियों के सम्बन्ध न रहने से उत्पन्न नहीं होता। इस कारण इसका अभाव होता है।

प्रश्न—योगदर्शन में तो लिखा है कि ज्ञान का अभाव जिस वृत्ति का आश्रय है, वह वृत्ति अभाव है।

उत्तर—यहाँ भी बाह्य ज्ञान अर्थात् नैमित्तिक ज्ञान के अभाव से ही तात्पर्य है।

मंत्र—प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति। गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥ ३ । ४ ॥

शब्दार्थ—प्राणाग्नयः=जीवनप्रकाशक प्राण। एव=है। एतस्मिन्=इस नव द्वार वाले। पुरे=नगर में अर्थात् शरीर में। जाग्रति=जागते हैं। गार्हपत्या=विवाहित स्त्री का स्वामी जिस अग्निहोत्र की अग्नि को स्थित करता है। ह=निश्चय। वा=यह। अपानः=अपान वायु। व्यानः=व्यान वायु। अन्वाहार्यपचनः=दक्षिणाग्नि जो शरीर की खुराक पचाती है। यत्=जो। गार्हपत्यात्=जो गृहस्थाश्रम में स्थित अग्नि है। प्राणीयते=सम्बन्ध रखता है। प्रणयनाद=सम्बन्ध से या कारण से। आहवनीयः=ब्रह्मचर्याश्रम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की अग्नि जिसको अग्निहोत्र के लिये ब्रह्मचारी स्थित करता है। प्राणः=प्राण वायु है।

अर्थ—जब सम्पूर्ण बाह्य इन्द्रियां सो जाती हैं, तो शरीर की रक्षार्थ प्राण-अग्नि जो शरीर की रक्षा का काम देती है, जागती है। जैसे जब प्रजा सो जाती है, तो उन के माल की रक्षार्थ, राजा रक्षक नियत करता है, वह रात्रि भर जागते हुए प्रजा के धन और जीवन की रक्षा करते हैं। इसी प्रकार स्वप्नावस्था में शरीर तथा इंद्रियों की रक्षा करता है, इस हेतु घर का रक्षक प्राण है। जो गृहस्थाश्रम में तान आदि की उत्पत्ति से सुख होता है, वह अपान वायु के द्वारा से होता है। और जो प्रकृति के सुखों से बढ़कर ईश्वर की उपासना, ध्यान, समाधी आदि वह सारे शरीर में व्यापक व्यान के द्वारा से होते हैं। अतः ब्रह्मचर्याश्रम ऋग्वेद श्रवण, जाग्रत अवस्था ज्ञान-काण्ड, प्राण-वायु गृहस्थाश्रम व यजुर्वेद में स्वप्नावस्था, कर्मकाण्ड अपानवायु, वानप्रस्थाश्रम, सामवेद, निदिध्यासन सुषुप्ति अवस्था, उपासना कांड व्यानवायु, तीनों आश्रमों की अग्नि का नाम आहोन्य, गार्हपत्य और अन्वाहार्य है।

प्रश्न—जब इंद्रियां और मन सो गये, तो प्राण किस प्रकार शरीर की रक्षा करता है?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर—जब तक शरीर में प्राण रहते हैं, तब तक प्रत्येक जीव इसको जीवित जान कर इससे डरता है। यदि प्राण न रहे, तो मृतक जान करके उसको नाश करने वाले जीव समाप्त कर देते हैं। प्राण की विद्यमानता, जीवन के विचार से शरीर की रक्षा करते हैं।

प्रश्न—स्वप्नावस्था में समान वायु और उदान वायु क्या करते हैं।

मंत्र—यदुच्छ्वास निश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः। मनो ह वाव यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ॥ ४ । ४६ ॥

शब्दार्थ—यत् = जो। उच्छ्वासनिश्वासौ = स्वास का बाहर से भीतर जाना और भीतर से बाहर आना है। आहुती = जो एक बार अग्निहोत्र में सामिग्री डाली जाती है, उसे आहुती कहते हैं। समम् = समान। नयति = करती है। इति = इससे। सः = वह नाभि में रहने वाला प्राण। समानः = समान कहलाता है। मनः = मनन शक्ति वाला जीवात्मा या मनकरण। हवाव = और। यजमानः = इस ज्ञान यज्ञ को करने वाला। इष्ट फलम् = जिस फल की इच्छा से यज्ञ किया जाता है, जो स्वार्थ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से किसी काम को आरम्भ किया जावे। एव=है। उदानः=उदान वायु। स=वह उदान वायु। एनं=इस। यजमानम्=यज्ञ करने वाले यजमान अर्थात् जीवात्मा को। अहरहर=प्रतिदिन। ब्रह्म=परमात्मा को। गमयति=प्राप्ति करता है।

अर्थ—नाभि से वायु ऊपर और नीचे को जाती है, जिसके समान ही रहने से मनुष्य जीवित रहता है। और जिसकी अवस्था में अन्तर आ जाने से, मौत आने का अनुमान होता है, वह समान वायु है। और मनन करने की शक्ति से जो मनरूपी करण से काम लेने वाला जीवात्मा है, वह यज्ञ करने वाला यजमान कहलाता है। और जिस आशय से यज्ञ किया जाता है, वह उदान प्रतिदिन इस जीवात्मा को ब्रह्म के पास ले जाता है अर्थात् जिसे सुषुप्ति कहते हैं।

प्रश्न—मन का अर्थ तो मनकरण है, जिससे कर्म इन्द्रियों और ज्ञान इंद्रियों के साथ जीवात्मा का सम्बंध होता है, तुमने इसका अर्थ जीवात्मा किस प्रकार किया?

उत्तर—मन दो हैं; एक मनकरण, दूसरे मन-शक्ति। इसी कारण शास्त्रों ने मन को नित्य और अनित्य बताया है। जिस शास्त्र ने मन शक्ति का विचार किया है, उसने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन को नित्य माना है। जैसा कि वैशेषिक दर्शन। और जिस शास्त्र ने मनकरण का विचार किया है, उसने मन को अनित्य बताया है। जैसाकि सांख्यदर्शन और छांदोग्योपनिषद् इत्यादि।

प्रश्न—वैशेषिक दर्शन ने तो मन को द्रव्य बताया है। तुम मन-शक्ति कहते हो, द्रव्यकरण तो हो सकता है, शक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि शक्ति द्रव्य के आश्रय रहती है।

उत्तर—वैशेषिक का तात्पर्य मन से, मन-शक्ति वाला जीवात्मा ही प्रयोजन है। यदि जीव में मन-शक्ति न हो, तो वह मनकरण से किस प्रकार काम ले सकता है।

मंत्र—अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति। यद्दृष्टं दृष्टं मनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टंचादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥ ५ । ४६ ॥

शब्दार्थ—अत्र=यहां। एष=यह। देवः=प्रकाशक जीवात्मा। स्वप्ने=स्वप्न में। महिमानम्=अपनी महिमा को। अनुभवति=अनुभव करता है, जानता है। यत्=जो। दृष्टं दृष्टं=देखा हुआ है और इसको देखा हुआ। अनु-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पश्यति=मालूम करता है अर्थात् मित्र, शत्रु, स्त्री, पुत्र इत्यादि को प्रत्यक्ष की भांति मालूम करता है। श्रुतं=सुनते हुए को। श्रुतं=सुनते हुए। एव=ही। अर्थम्=अर्थ को एक बार जिस को देखा या सुना है बार-बार। अनुशृणोति=फिर सुनता है। देशदिगन्तरैश्च=दूसरे देश और दूसरे दिशा की वस्तुओं को। प्रत्यनुभूतं=अनुभव किये हुये को। पुनः पुनः=बार बार। प्रत्यनुभवति=अनुभव करता है अर्थात् जानता है। दृष्टं च दृष्टं=चाहे इस कारण देखने योग्य हो या न हो। श्रुतं च श्रुतं च=चाहे इस जन्म में न सुना हो, चाहे इस जन्म में सुना हो। अनुभूतं च चाननुभूतं=चाहे इस जन्म में उसका अनुभव किया हो अथवा न किया हो। सच्चासच्च=चाहे वह सत हो या न हो। सर्वं=सब को। पश्यति=देखता है। सर्वः=सब प्रकार की वस्तुओं को। पश्यति=देखता है।

अर्थ—इस प्रश्न के उत्तर में कि कौन देवता स्वप्न को देखता है, कहते हैं कि उपरोक्त देवता अर्थात् जीवात्मा स्वप्नावस्था में अपनी महिमा को देखता है। जो कुछ पूर्व देखा है चाहे वह इस दशा में विद्यमान न हो, परन्तु उसका फोटो मन पर होने से उसको देखता है। जो कुछ सुना है, चाहे इस समय वह शब्द विद्यमान न हो, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसका फोटो मन पर होने से वह सुनता है। चाहे कोई देश अथवा दिशा हो, इनका प्रभाव मन पर आजाने से इनका नितान्त स्पष्ट ज्ञान होता है। जिस वस्तु को एक बार देख चुका है, उस वस्तु को स्वप्न में बार बार देखता है। जो पदार्थ देखे हुये हैं, चाहे इस जन्म में न भी देखे हों। जो पदार्थ सुने हों, चाहे इस जन्म में न भी सुने हों। जिन वस्तुओं का अनुभव किया हो, चाहे इस जन्म में न भी अनुभव किया हो, चाहे इनकी सत्ता इस समय जगत में विद्यमान न हो अर्थात् अभाव हो, सब को देखता है।

प्रश्न—श्रुति में तो लिखा है कि जो वस्तु देखी हो या न देखी हो, सुनी हो या न सुनी हो, अनुभव की हो या न की हो, जो सत् हो या न हो, सब को देखता है। तुमने इस जन्म का न देखना, सुनना कहां से लिया है?

उत्तर—प्रथम तो इस श्रुति के पहले शब्द ही विदित करते हैं कि जो देखा है, फिर इसको देखता है। और जिसको सुना है फिर इसको सुनता है। दूसरे जिस वस्तु की सत्ता संसार में विद्यमान न हो, उसकी आकृति हो नहीं सकती। जिसकी आकृति नहीं, उसके संस्कार भीतर जा ही नहीं सकते। जिसके संस्कार भीतर विद्यमान हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हों, उनको देख किस प्रकार सकता है। मूल बात यह है कि जाग्रत अवस्था में इस शरीर के केमरा के द्वारा जिन वस्तुओं के फोटो उतारे, उन्हीं का स्वप्नावस्था में देखना सम्भव है। जो फोटो उतारा ही नहीं गया, उसको देख किस प्रकार सकते हैं। जब कि बिना देखे सुने और अनुभव किये हुये स्वप्न में देखना, सुनना और अनुभव करना असम्भव है। अतः सम्भव होने के लक्षण से यह अर्थ करना पड़ता है, जिसको इस जन्म में देखा सुना और अनुभव न किया हो।

मंत्र—स यदा तेजसाऽभिभूतो भवति। अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिन् शरीरे एतत्सुखं भवति ॥ ६ । ४७ ॥

शब्दार्थ—स = वह। यदा = जब या जिस दशा में। तेजसः = प्रकाश से। अभिभूतः = दिया हुआ। भवति = होता है। अत्र = इस दशा में। एषदेवः = यह जीवात्मा। स्वप्नान = स्वप्न को। न = नहीं। पश्यति = देखता है। अथ = परमात्मा के प्रकाश से दब जाने के पश्चात्। तव = वह जीवात्मा। अस्मिन् शरीरे = इस शरीर के भीतर। एतत् = यह सुषुप्ति अवस्था। सुखम् = सुख को। भवति = होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थ—जिस समय इस जीवात्मा का ज्ञान परमात्मा के प्रकाश से दब जाता है। जिस प्रकार नेत्र का प्रकाश सूर्य के सम्मुख प्रकाश के प्रकाश से दब जाता है, उस समय चौंध्या जाते हैं और कुछ देख नहीं सकते। ऐसे ही स्वप्न की अवस्था में यह जीवात्मा परमात्मा के प्रकाश से दबा हुआ ज्ञान-शून्य सा मालूम होता है। इस समय यह किसी स्वप्न को नहीं देखता और प्रकाश से दब कर बाह्य-ज्ञान के रुक जाने के पश्चात् यह जीवात्मा इस शरीर के भीतर ही परमात्मा के सुख को देखता है अर्थात् सुषुप्ति अवस्था में जीवात्मा को भीतर से ही सुख मालूम होता है।

प्रश्न—जब जीवात्मा का ज्ञान परमात्मा के तेज से दब गया, तो उस समय ज्ञान के नं होने से सुख किस प्रकार हो सकता है? क्योंकि सुख भी एक प्रकार का ज्ञान है, आत्मा के अनुकूल जानने का नाम सुख है।

उत्तर—जीव के भीतर ब्रह्म और बाहर प्रकृति और ब्रह्म दोनों हैं। जब जीवात्मा बाहर की ओर देखता है, तो कभी प्रकृति के संग से दुख और परमात्मा के कारण सुख होतां है। परन्तु जब भीतर की ओर देखता है, तो पहले परमात्मा के प्रकाश से ज्ञान दब जाता है और पुनः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परमात्मा के स्वरूप से सुख मिलने लगता है। जैसे जब कभी हम अन्धेरे मकान से एक दम सूर्य से सम्मुख आ जाते हैं, तो अँधेरा आँखों के सामने आ जाता है, थोड़ी देर के पश्चात् पदार्थ फिर दृष्टि पड़ने लगते हैं।

मंत्र—स यथा सौम्य। वयांसि वासोवृक्षं सम्प्रातिष्ठन्ते। एवं हवै तत्सर्वं परआत्मनि सम्प्रातिष्ठते ॥ ७ । ४८ ॥

शब्दार्थ—स = वह ऋषि पिप्लाद कहने लगा। यथा = जैसे। सोम्य = हे चन्द्र समान शांत स्वरूप। वयांसि = पक्षी उड़ने वाले जीव। वासः = वास स्थान। वृक्ष = वृक्ष के आश्रय। सम्प्रतिष्ठन्ते = तिष्ठित होते हैं। एवं = इसी प्रकार। हवै = और। तत्सर्वं = वह सब अर्थात् मन और इन्द्रियाँ इत्यादि। परआत्मनि = सम्पूर्ण जगत् के आधार के स्थान परमात्मा हैं। सम्प्रतिष्ठते = स्थित हो जाते हैं।

अर्थ—पिप्लाद ऋषि ने फिर कहा—हे प्रिय शिष्य! जिस प्रकार सायंकाल के समय सम्पूर्ण पक्षी प्रत्येक स्थान पर चर-चुग कर अपने रहने के स्थान वृक्ष पर एकत्रित हो जाते हैं, और दिन भर इधर उधर घूमते रहते हैं। इसी प्रकार यह सम्पूर्ण इन्द्रियां जागृत और स्वप्न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अवस्था में तो अपने अपने विषयों में लगी रहती हैं परन्तु सोने के समय सब अपने २ विषयों को त्याग कर अपने मुख्य स्थान अर्थात् परमात्मा के आश्रय स्थित हो जाती हैं।

प्रश्न—क्या सोने की दशा में इन्द्रियाँ परमात्मा के आश्रय स्थित हो जाती हैं ? या इन्द्रिय और मन के मध्य तमोगुण का परदा आ जाता है।

उत्तर—मूर्छा और सुषुप्ति में यही अन्तर है कि सुषुप्ति में तो इन्द्रियाँ जिस प्रकाश के आधार चल सकती हैं, वह प्रकाश परमात्मा के तेज से दब जाता है। इस समय जीव को किसी दूसरी वस्तु की सुधी ही नहीं रहती। और सुषुप्ति की अवस्था में जीव का सम्बन्ध कारण शरीर से होता है और कारण शरीर में सत, रज, तम की दशा समान होती है। इस समय कोई गुण किसी दूसरे को दबा ही नहीं सकता।

प्रश्न—यदि सुषुप्ति अवस्था में जीव का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होता है, जिससे ब्रह्म के तेज से जीव का ज्ञान दब जाता है, तो समाधि की क्या ज़रूरत है ?

उत्तर—समाधि और सुषुप्ति में ब्रह्म का सम्बन्ध जीव के साथ होता है। अन्तर केवल इतना है कि सुषुप्ति में ब्रह्म का सम्बंध जीव के साथ होता है। भेद केवल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इतना है कि सुषुप्ति में ब्रह्म का आनन्द साक्षात नहीं होता। क्योंकि इस समय जीव की बुद्धि ब्रह्म दर्शन के योग्य नहीं होती। जैसे एक दम से अँधेरे से प्रकाश में आने से आंखें चकाचौंध हो जाती हैं। और समाधि अवस्था में नित्य के अभ्यास से जीव ब्रह्मदर्शन के योग्य हो जाता है।

मंत्र—पृथिवी च पृथिवीमात्रा चाऽऽपश्चाऽऽपोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्राचाऽऽकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यञ्च त्वक् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च हस्तौ चाऽऽदातव्यं चोपस्थश्चाऽऽनन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यञ्च मनश्च मन्तव्यञ्च बुद्धिश्च बोद्धव्यञ्चाहंकारश्चाहंकर्तव्यम् च चित्तञ्च चेतयितव्यञ्च तेजश्च विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च विधारयितव्यञ्च ॥ ८ । ४९ ॥

शब्दार्थ—पृथिवी = भूमि। च = और। पृथिवी मात्रा = सूक्ष्म भूत अर्थात गंध। च = और। आपः = पानी। च = और। अपोमात्रा = जल की सूक्ष्म अवस्था

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथवा रस। तेजः = अग्नि। च = और। तेजोमात्रा = अग्नि की सूक्ष्म अवस्था अथवा रूप। वायु = वायु। वायु-मात्रा = वायु की सूक्ष्म अवस्था अर्थात् स्पर्श। आकाशः = आकाश जिसका गुण शब्द है। अथवा जिसमें निकलना, प्रवेश करना संभव हो। चक्षु = नेत्र। द्रष्टव्यं = देखने योग्य वस्तु। च = और। श्रोत्र = कान जिनसे शब्द सुनते हैं। च = और। श्रोतव्यं = सुनने योग्य शब्द। च = और। घ्राण = नाक जिससे सूँघते हैं। च = और। घ्रातव्यं = सूँघने योग्य सुगंध दुर्गंध। च = और। रस = स्वाद। च = और। रसयितव्यम् = स्वादिष्ट वस्तु। च = और। त्वक् = त्वचा। च = और। स्पर्शयितव्यम् = स्पर्श योग्य वस्तु। च = और। वाक् = वाणी। च = और। वक्तव्यम् = भाषण योग्य शब्द। हस्तौ = दोनों हाथ। च = और आदातव्यम् = पकड़ने योग्य वस्तु। च = और। उपस्थ = उपस्थेन्द्रिय। च = और। आनन्द-यितव्यम = इस इंद्रिय से जिस वस्तु को अनुभव करें अर्थात् जिससे सांसारिक सुख भोगें। पायुः = गुदा। च = और। विसर्जयितव्यम् = त्यागने योग्य वस्तु अर्थात् मल मूत्र। च = और। पादौ = दोनों पांव। च = और। गन्तव्यम् = मार्ग चलने योग्य वस्तु। मनः = मन जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञान और कर्म इंन्द्रियों को सहायता देता है। च = और। मन्तव्यम् = मनन करने या जानने योग्य वस्तु। च = और। बुद्धि = ज्ञान। च = और। बोद्धव्यम् = जानने योग्य वस्तु। च = और। अहङ्कारः = अहङ्कार। च = और। अहङ्कर्त्तव्यम् = जिन वस्तुओं में अहंकार किया जावे। च = और। चित्तम् = चैतन्य करने वाला अन्तःकरण। च = और। चेतयितव्यं = जिन वस्तुओं का चैतन्य अर्थात विचार किया जावे। च = और। तेजो = प्रकाश। च = और। प्राणः = धारण करने वाली। विद्योतयितव्यम् = जो वस्तु प्रकाश से प्रकट होने योग्य हो। च = और। विधारयितव्यम् = जिन वस्तुओं को पदार्थ धारण करते हैं।

अर्थ—पांच स्थूल भूत अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि और इनके सूक्ष्म भूत या गुण, गंध, रस, रूप, शब्द स्पर्श इत्यादि। पांच ज्ञानेन्द्रियां अर्थात् नाक, रसना, नेत्र, त्वचा, श्रोत्र और इनके विषय अर्थात् सूंघने योग्य वस्तु, स्वादिष्ट वस्तु, रूप वाले पदार्थ स्पर्श करने योग्य वस्तु, और शब्द पांच कर्मेन्द्रियां वाणी, हाथ, पांव, गुदा, उपस्थेन्द्रिय। और उनके विषय पकड़ना, चलना, बोलना आदि चारों अन्तःकरण अर्थात मन जिससे किसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वस्तु के दोनों पक्ष लेकर विचार किया जाता है, बुद्धि जिसको ज्ञान कहते हैं। अहङ्कार और चित्त अर्थात् चेतन्य करने वाला अन्तःकरण और इनके विषय प्रकाश और जिसको वह प्रकाश करे। प्राण अर्थात शरीर को उठाकर ले चलने वाली या स्थित रखने वाली वायु अर्थात् स्टीम जिसको स्वांस भी कहते हैं और जिसको वह प्राण स्थित रखते हैं, यह सब वस्तु इस तेज से छुप जाती है।

मंत्र—एष हि द्रष्टा स्पृष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः। सपरेऽक्षरे आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥ ९। ९० ॥

शब्दार्थ—एष = यह। हि = निश्चय करके। द्रष्टा = देखने वाला। स्पृष्टा = स्पर्श करने वाला। श्रोता = सुनने वाला। घ्राता = सूँघने वाला। रसयिता = रस को जानने वाला। मान्ता = विचार करने वाला। बोद्धा = जानने वाला। कर्त्ता = कर्म करने वाला। विज्ञानातमा = जीवात्मा। पुरुषः = जो इस शरीर के भीतर रहता है। स = वह जीवात्मा। परे = उससे सूक्ष्म सर्वव्यापक। अक्षरे = नाश रहित। आतमनि = जो प्रत्येक वस्तु के भीतर विद्यमान है उसमें। सम्प्रतिष्ठते = स्थित हो जाता है।

अर्थ—सुषुप्ति की दशा में यह जीवात्मा जो जागते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुए नेत्रों से देखता, कानों से सुनता, नाक से सूँघता, जिह्वा से रस लेता, त्वचा से छूता, मन से विचार करता, बुद्धि से जानता और जो कर्म करने में स्वतन्त्र कर्त्ता कहलाता है, जो नैमित्तिक ज्ञान को प्राप्त करने वाला है। क्योंकि न तो इंद्रियों आदि को ज्ञान होता है, क्योंकि यह ज्ञान प्राप्त करने के कारण (यन्त्र) हैं। और न परमात्मा को नैमित्तिक ज्ञान हो सकता है। क्योंकि वह पूर्व ही से सर्वज्ञ है, उसके ज्ञान से बाहर कोई सत्ता नहीं जिसको वह नैमित्तिक ज्ञान से जाने। और वह जीवात्मा इस कारण से सूक्ष्म ब्रह्म के आश्रय स्थित हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जीव के भीतर ब्रह्म और बाहर ब्रह्म और प्रकृति दोनों हैं। जीवात्मा बाहर इंद्रियों से देखता है और भीतर बुद्धि इंद्रियों की स्वाभाविक शक्ति है, इस से अनुभव करता है। जब बाहर की ओर कर्म करने वाली इंद्रियां रुक जाती हैं, तब जीवात्मा की बुद्धि भीतर की ओर कर्म करने लगती है। उस समय जीवात्मा बाह्य ज्ञान से नितान्त शून्य हो जाता है। बाहर बहुत वस्तुओं के होने से जीव का ज्ञान फैल जाता है। क्योंकि प्रत्येक इंद्रिय मन को अपने विषय की ओर ले जाती है। और मन बड़े वेग से इंद्रियों के विषयों का जीवात्मा को बोध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कराता है, जिससे आत्मा की वृत्ति बड़े वेग से चलती है। बाहर जीवात्मा किसी वस्तु में स्थित नहीं हो सकता, जब मन थक जाता है, तो परमात्मा के नियमानुकूल जीव भीतर की ओर काम करने लगता है, जिससे उसको आनन्द मालूम होता है। उस समय किसी इंद्रिय के साथ सम्बन्ध न होने से मन का काम रुका रहता है। इस कारण जब तक जीव का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध रहता है, तब तक जीव स्थित रहता है, तब ही जीव को आनन्द मिलता है। और जिस समय मन की थकावट ब्रह्म के आनन्द से दूर हो जाती है, तब मन फिर कर्म करने लगता है। और मन के काम के साथ ही जीव की बुद्धि बाहर आजाती है, जिससे वह दुःख को सुख अनुभव करता है। अतः जीव को आनन्द मिलने का कारण केवल ब्रह्म ही है।

मन्त्र—परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो हवै तदच्छायमशरीर मलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य। स सर्वज्ञः सर्वो भवति तदेष श्लोकः १०।८।१।

शब्दार्थ—परम=सब से सूक्ष्म महान। एव=है। अक्षरम्=नाश रहित। प्रतिपद्यते=प्राप्त होता है, जाना जाता है। स=वह। यो=जो। हवै=और। तत=वह। अच्छायम्=छाया रहित अर्थात जिसकी कहीं छाया हो ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं सकती। क्योंकि जहा वह स्वयम् न हो, वहां उसका साया हो। अशरीरम्=जिसका शरीर नहीं, क्योंकि जिस का शरीर होगा वह नित्य नहीं हो सकता। अलोहितम्=जिसका रङ्ग नहीं अर्थात् जिसमें रक्तादि का सम्बन्ध नहीं। शुभ्रम्=जो शुद्ध। अक्षरम्=नाश रहित को। वेदयते=जान लेता है। यस्तु=जो विषयों से वैराग्य वाला ज्ञानी हो। सौम्य=अपने प्रिय पुत्र। सः=वह मनुष्य। सर्वज्ञ=सब का ज्ञाता। स=वह। सर्व=मनुष्य। भवति=होता है। तत्=उसके अर्थ। एव=यह। श्लोक=श्लोक प्रमाण है।

अर्थ—जो ज्ञान से सब वस्तुओं के मूल तत्त्व को जान कर सब संसारिक विषयों से वैराग्य वाला होगया है जिसने इस कारण से सूक्ष्म सर्वत्र विद्यमान होने से जिसका छाया नहीं हो सकता और न उसका कोई शरीर है। क्योंकि वह सच्चिदानन्द है, जिसका शरीर है; वह सत हो ही नहीं सकता। क्योंकि शरीर स्थूल संयुक्त है, जिसका किसी न किसी समय में उत्पन्न होना अवश्य है। और सत कहते हैं तीन काल में एक सा रहने वाले को। अतः कोई शरीर वाला सत नहीं कहला सकता। जिसका कोई रङ्ग नहीं, जो शुद्ध है, जो मनुष्य इसको प्राप्त कर लेता है, वह इसके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जानने के कारण से सर्वज्ञ कहलाता है। क्योंकि इस नाश रहित को जान लेना सब को जान लेना है।

प्रश्न—क्या ईश्वर को जानने वाला सर्वज्ञ होता है?

उत्तर—सर्वज्ञ के दो अर्थ हैं,एक वह जो प्रत्येक वस्तु को एक ही साथ जान सकता है। दूसरे वह जिसको सब वस्तुओं को जान लेना हो। एक साथ सब वस्तुओं को अतिरिक्त ईश्वर के कोई नहीं जान सकता। क्योंकि मन एक काल में दो वस्तुओं का ज्ञान नहीं रखता, सब को किस प्रकार जान सकता है। अतः जो ईश्वर को जानता है, उसको सर्वज्ञ दूसरे अर्थों में कहा गया अर्थात् उसने कुल पदार्थों को जान लिया है।

प्रश्न—ईश्वर के जानने से कुल पदार्थों का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है?

उत्तर—ईश्वर का ज्ञान अन्तिम मार्ग है और कोई मनुष्य बिना मध्य मार्ग को पूर्ण किये अन्तिम मार्ग पर नहीं पहुंच सकता। अतः जो ईश्वर का ज्ञान प्राप्त कर चुका, उसने सब पदार्थों को जान लिया।

प्रश्न—ईश्वर का ज्ञान अन्तिम मार्ग है, इसका क्या प्रमाण है।

उत्तर—ईश्वर को सब से सूक्ष्म होने के कारण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परम कहा गया है और ईश्वर के जानने को परा विद्या के नाम से कहा गया है। अतः सूक्ष्म वस्तु स्थूल में प्रविष्ट होने की दशा में स्थूल के पश्चात ही जानी जायगी निदान जो सब से सूक्ष्म और सब में व्यापक है, उस का ज्ञान सब के पश्चात् होना अवश्य है। संसार में तीन ही वस्तु है, प्रकृति, जीव, ब्रह्म। जिस मनुष्य को प्रकृति के स्वरूप का ज्ञान न हो, उसको वैराग्य हो ही नहीं सकता। प्रत्यक्ष में प्रकृति के परिणाम अत्यन्त सुन्दर मालूम होते हैं, परन्तु अन्त बुरा है। अतः वैराग्य प्रकृति के बने हुए पदार्थों की वर्तमान अवस्था तथा परिणाम दोनों को भले प्रकार जानता है। यदि इसको प्रकृति में लिप्त होने का विचार होता, तो वैराग्य किस प्रकार हो सकता। जीव के भीतर ब्रह्म है, इसलिये ब्रह्म के ज्ञान से पहले जीव का ज्ञान भी हो जाता है। अतः जिसने जीव ब्रह्म और प्रकृति के मूल कारण को जान लिया, उसके सर्वज्ञ होने में क्या संदेह है।

मन्त्र—विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठान्ति यत्र। तदक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य! स सर्वज्ञः सर्वमेवाऽऽविवेशेति॥ ३।१।८।२।।

शब्दार्थ—विज्ञानात्मा=नैमित्तिक ज्ञान का केन्द्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवात्मा। सह=साथ। देवैः=बाहर और भीतर के जानने के शस्त्र और जिनको देवता भी करते हैं। सर्वे=सब के। प्राणा=स्वांस। भूतानि=भूत। सम्प्रतिष्ठन्ति=स्थित होते। यत्र=जिस ब्रह्म में। तदु=इस। अक्षरम्=नाश रहित। वेदयते=जान गया है। यस्तु=जो वैराग्य वाला मनुष्य। सौम्य=हे शांत स्वरूप शिष्य। सः=वह। सर्वज्ञः=सर्वज्ञ। सर्वम्=सब को। एव=है। अविवेश=सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इति=यह।

अर्थ—जिस ब्रह्म में जीवात्मा सम्पूर्ण देवतों अर्थात् इन्द्रियों के साथ प्राणों और भूतों के सहित स्थित होता है। जो मनुष्य इस नाश रहित ब्रह्म को जान जावे, हे प्रिय पुत्र! वह सर्वज्ञ और सब में प्रवेश करके इनके भीतरी वृत्तान्त को जानता है। इस मंत्र से मालूम होता है कि सबसे उच्च ब्रह्मविद्या है। जो मनुष्य इस विद्या से विज्ञ होते हैं, वह सर्वज्ञ कहलाते हैं। क्योंकि ज्ञान का सब से श्रेष्ठ फल इनको प्राप्त होता है। ज्ञान का आशय केवल तीन बातों के जानने से प्राप्त हो जाता है। प्रथम मैं क्या हूँ। द्वितीय, मुझको क्या उपयोगी है। तृतीय, हानिकारक क्या है। वा जो मनुष्य अपनी सत्ता को जानता है, उसी को लाभ हानि का ज्ञान होता है। जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सत्ता से अनभिज्ञ है, उसको लाभ हानि का ज्ञान किसी प्रकार हो ही नहीं सकता । यह तो मोटी बात है, जिस दुकानदार को अपने सामान का ज्ञान न हो, वह किस प्रकार जान सकता है कि लाभ हुआ अथवा हानि । इसी विचार को लेकर दुकानदार लोग प्रत्येक वर्ष अपनी पूंजी की परीक्षा करते रहते हैं, ताकि अगले वर्ष हानि-लाभ को ठीक समझ सकें । निदान जिस मनुष्य को हानिकारक वस्तु का मूल मालूम है, वह कभी इसकी उपासना को स्वीकार नहीं करता । जब हानिकारक की उपासना न हो, तो दुःख किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है । क्योंकि जिसका हानि होना निश्चय हो जावे, उसके पास कोई जा भी नहीं सकता । यह तो सम्भव है, अविद्या से हानिप्रद वस्तु को लाभदायक विचार करके उसकी उपासना की जावे । परन्तु हानिप्रद जानने के पश्चात् तो मूर्ख भी उस ओर ध्यान नहीं करता । जब उपयोगी वस्तु की वास्तविक दशा ज्ञात हो गई, तो उसकी उपासना आवश्यक हो गई; जिसका आनन्द मिलना आवश्यक है । जब दुख से मुक्त होकर आनन्द प्राप्त हो गया, तो त्रुटि किस वस्तु की रही ।

प्रश्न—हम तो देखते हैं कि प्रायः मनुष्य मद्यपान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और मांस भक्षण को बुरा समझते हैं। और बहुत से साधु धन की निन्दा करते हैं। बहुत से आर्य-समाजी प्रकृति की उपासना को बुरा जानते हैं। परन्तु कर्म इसके विरुद्ध देखा जाता है। जिस से स्पष्ट विदित है कि हानि योग्य जानकर भी उपासना हो सकती है।

उत्तर—इन मनुष्यों को संदेह युक्त ज्ञान होगा, सत्यज्ञान नहीं। जो मनुष्य मांस-भक्षण को पाप समझते हैं, वह इसको किस प्रकार काम में ला सकते हैं। यदि कोई आर्य-समाज का सभासद् प्रकृति को बुरा जान ले, तो फिर वह प्रकृति ज्ञान को बढ़ाने में क्यों श्रम करने लगा। प्रकृति के मूल तत्व को जाने बिना प्रकृति की उपासना को बुरा बताना किस प्रकार सम्भव है। और जिस प्रकृति के मूल तत्व को जान लिया, तो प्राकृतिक विज्ञान का ज्ञाता हो गया। क्योंकि विज्ञान और सत्ता प्रतिकूल हैं। निदान इस दशा में जो आर्य-जन प्राकृतिक विज्ञान को जानना चाहते हैं, वास्तव में वह प्रकृति विज्ञान से अनभिज्ञ हैं। इसी प्रकार साधु जो धन को बुरा कहते हैं और एकत्रित भी करते हैं, बिना ज्ञान के सुने सुनाए बुरा कहते हैं। जो मनुष्य इन पदार्थों के मूल कारण को जान गये हैं, वह जिसको बुरा बताते हैं, स्वप्न में भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसकी उपासना नहीं करते।

प्रश्न—ईश्वर को जानने से सर्वज्ञ हो जानना असम्भव नहीं मालूम होता। यह शब्द मिथ्या लिख दिया है!

उत्तर—ईश्वर जानने से सर्वज्ञ हो जाता है। जब कहा जाता है कि ईश्वर का स्वरूप क्या है! तो विद्वान् मनुष्य बताते हैं कि वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। अर्थात् यह सच्चिदानन्द का शब्द एक शब्द है, परंतु जानने वाले जानते हैं कि यह शब्द विज्ञान से परिपूर्ण है। क्योंकि यह शब्द सत, चित, आनन्द इन तीन शब्दों का योग है। जब कहा ईश्वर क्या है? तो उत्तर मिला कि ईश्वर सत है। परंतु सत के अर्थ तीन काल हैं, यदि अकेला ईश्वर ही सत होता, तो जगत न बनता। क्योंकि उपादान कारण के गुण विद्यमान न हों। यह तो सम्भव है कि गुण उपादान कारण में विद्यमान न हों, वह निमित्त कारण में विद्यमान हों। क्योंकि निमित्त कारण से भी बहुत से गुण उपादान कारण में आते हैं। परंतु यह सम्भव नहीं कि उपादान कारण की कोई वस्तु निमित्त कारण में विद्यमान न हो। निदान चैतन्य ईश्वर के सत होने की दशा में संपूर्ण वस्तु का उपादान कारण ईश्वर ही हो सकता है। जब ईश्वर संपूर्ण वस्तु का उपादान कारण हुआ तो कोई वस्तु जड़ नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सकती। क्योंकि चेतन्य ईश्वर से बनी हुई वस्तु में ज्ञान का होना अवश्य है, परन्तु संसार में जड़ वस्तु दृष्टि पड़ती है, जिससे सम्पूर्ण पदार्थों का उपादान-कारण ईश्वर नहीं हो सकता। जड़ अर्थात् ज्ञान रहित वस्तु के उपादान-कारण को जड़ मानना पड़ता है, अतः प्रकृति का सत् होना आवश्यक है। जब प्रकृति सत हुई, तो लक्षण अति व्याप्त हो गया। तो लक्षण करना पड़ा कि ईश्वर सत् चित्त है। परन्तु ऐसा मानने में दो प्रकार की वस्तु हो जाती हैं। एक आनन्द स्वरूप, दूसरे दुख स्वरूप; अर्थात् जड़ में न तो आनन्द स्वरूप दुख का आना सम्भव है, क्योंकि वह सूक्ष्म है। और सूक्ष्म में स्थूल के गुण जा ही नहीं सकते। और न किसी को सुख अनुभव हो सकता है। क्योंकि परमात्मा आनन्द स्वरूप है, इनको सुख किस प्रकार हो सकता है। प्रकृति में जड़ होने के कारण से सुख अनुभव करने की शक्ति नहीं। अतः किस प्रकार सुख दुख अनुभव हो नहीं सकता। क्योंकि अनुभव करने वाला नहीं परन्तु सुख दुख अनुभव होते हैं; इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। अतः सुख दुख अनुभव करने वाला चेतन्य माना जावे, तो उसकी दो ही दशा हो सकती हैं; या तो वह सत, या असत। यदि असत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वीकार किया जावे, तो उसके वास्ते निमित्त कारण का होना अत्यावश्यक है; परन्तु हैं दो ही, एक ईश्वर, एक प्रकृति। ईश्वर को उसका उपादान कारण माना जावे, तो उसकी प्राकृतिक सत्ता बिना ईश्वर मानना पड़ेगा, इस दशा में प्रकृति स्वतन्त्र और ईश्वर वाध्य होगा। क्योंकि निमित्त-कारण उपदान-कारण के अधिकार में होता है। यदि ईश्वर उपादान-कारण, प्रकृति निमित्तकारण मानी जावे, तो प्राकृतिक पृथक् होने से ईश्वर भी पृथक् होगा। यदि वह पृथक् माना जावे, तो सुख दुःख का अनुभव करने वाला पृथक् मानना पड़ेगा, जो कि मिश्रित है।

प्रश्न—हम ईश्वर को अभिन्न निमित्त उपादान-कारण मानते हैं।

उत्तर—यह सम्भव नहीं क्योंकि निमित्त कारण का वाध्य होना और उपादान-कारण का स्वतन्त्र होना आवश्यक है, क्योंकि वाध्यता और स्वतन्त्रता एक दूसरे के प्रतिकूल है; वह ईश्वर में नहीं रह सकतीं। द्वितीय निमित्त कारण का संयोग वियोग को स्वीकार करना आवश्यक है, जो कि सीमा वाली और एक से अधिक वस्तुओं में सम्भव है। क्योंकि कर्त्ता निमित्त कारण को मिलाकर या तोड़कर ही किसी वस्तु को बना सकता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। ईश्वर एक और सर्वव्यापक है, न तो वह संयोग और न वियोग को स्वीकार करता है । अतः निमित-कारण हो ही नहीं सकता। तीसरे निमित-कारण निमित्त के प्रभाव को स्वीकार करके उपादान-कारण की दशा को स्वीकार करता है। बस उपादान कारण और प्रकृति को एक कहना अपने दोष से युक्त है जैसे कोई कहे कि वह आदमी अपने कन्धे पर खुद चढ़ गया । इस बात को कोई बुद्धिमान् सत्य नहीं मान सकता। ऐसे ईश्वर ने अपने ऊपर प्रभाव डाल कर जगत बनाया, कोई बुद्धिमान यह स्वीकार नहीं कर सकता। अतः तीसरी सत्ता जोकि सत चित हो आवश्यक तौर पर मानना पड़ती है; जब सत्य जीव में लक्षण चला गया तो कहना पड़ा ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है। अतः प्रकृति सत जीवात्मा सच्चित और परमात्मा सच्चिदानन्द है । प्रत्येक प्रश्न जोकि धर्म सम्बन्धी हो सकता है, उसका उत्तर इस शब्द में वर्तमान है; जिसको पुस्तक विस्तृत होने के कारण नहीं लिख सकते। जो मनुष्य ईश्वर को जान ले, उसने मानों कुल वस्तुओं की सूरत को जान लिया । चतुर्थ प्रश्न समाप्त हुआ।

—o—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथ पञ्चम प्रश्न

मंत्र—अथ हैनं शैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ । स यो हवै तद्भगवन् ! मनुष्येषु प्रायणांतमोङ्कार माभिध्यायीत । कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ॥१।८३॥

शब्दार्थ—अथ=गार्गी के प्रश्न का उत्तर समाप्त होने के पश्चात् । एनम्=इस पिप्पलाद ऋषि से । शैव्य=शिवके पुत्र ने । सत्यकामः=जिसका नाम सत्यकाम था । पप्रच्छ= प्रश्न किया । स यः हवै=वह जिसने यम नियमके द्वारा अपने को प्रसिद्ध कर लिया कि वह बड़ा तपस्वी है । भगवन्=हे गुरु महाराज । मनुष्येषु=मनुष्यों में से जो मनुष्य । प्रायणांतम्=जीवन के समाप्ति तक । ओंकारम्=ओंकार परमात्मा के सर्वोत्तम नाम को । अभिध्यायीत=चित्त को एकाग्र कर के ध्यान करता है । कतमम्=किस लोक को । स=वह । तेन=इस ध्यान के कारण । लोकम्=लोक को । जयति= अपने वश में कर लेता है । इति = यह प्रश्न है ।

अर्थ—गार्गी के प्रश्न का उत्तर जब पिप्पलाद ऋषि दे चुके, तो शिव के पुत्र ने जिसको मनुष्य सत्यकाम के नाम से उच्चारण करते थे, जिसने योग के अङ्गों को पूर्णतया अभ्यास द्वारा अपने को प्रसिद्ध कर लिया था ।

८

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऋषि से प्रश्न किया कि गुरु महाराज ! जो मनुष्य जीवन पर्यन्त मन और इंद्रियों को रोक कर ओङ्कार का ध्यान करता है, अथवा जिसको ओङ्कार कहते हैं, उस में मनको लगाता है, वह इस कर्म से किस लोक को जय कर लेता है।

मन्त्र—तस्मै स होवाच । एतद्वै सत्यकाम ! पराञ्चपरं च ब्रह्म यदोंङ्कारः । तस्माद्विद्वानेते-नैवाऽऽयतनेनैकतरमन्वेति ॥ २ । ५४ ॥

शब्दार्थ—तस्मै=इस सत्यकाम को । सः=वह पिप्प-लाद ऋषि ने । ह उवाच=साफ शब्दों में यह उपदेश किया। एतद्वै=निश्चय यही है । सत्यकाम=हे सत्यकाम । परम्=जो उसको सब से श्रेष्ठ मुक्ति के प्राप्त करने के विचार से इस की उपासना करता है । च=और । अपरम्=संसारिक राज्यादि सुखों की स्वार्थ से उपासना करता है। च=और। ब्रह्म=सब से श्रेष्ठ महान् । यत्=जो । ओङ्कारम्=ओङ्कार परमेश्वर है । तस्मात्=इस कर्म को । विद्वान्=वह ज्ञानी मनुष्य । एतन्=इस ही । एव=है । आयतनेन = शरीर से । एकतरमर =मुक्ति सुख अथवा संसारिक चक्रवर्ती राज्य और जिस स्वार्थ से उपासना करता है इच्छित फल को । अन्वेति = प्राप्त करता है ।

अर्थ—सत्यकाम के प्रश्न के उत्तर में पिप्पलाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऋषि ने कहा कि सत्यकाम जगत् में दो प्रकार की वासना है। एक तो सब से श्रेष्ठ मुक्ति की वासना है, दूसरी इस से न्यून सांसारिक राज्यादि की वासना है। अतः जो ओङ्कार का नियम पूर्वक जीवन पर्य्यन्त ध्यान करता है उसकी जिस प्रकार की इच्छा हो, वह पूरी हो जाती है अर्थात् जो ज्ञानी पुरुष है, वह जिस विचार से ब्रह्म की उपासना करता है, उस में सफल होता है। उसको पुनर्जन्म की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु इस जन्म में सब सुखों को प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न—सत्यकाम का प्रश्न तो यह था कि ओङ्कार का जीवन पर्य्यन्त ध्यान करने वाला किस लोक को जय करता है ? उत्तर यह दिया गया कि वह दोनों प्रकार के सुखों को प्राप्त कर लेता है।

उत्तर—जैसे कोई कहे कि ब्रह्म कहाँ रहता है, तो उत्तर यही होगा कि सर्वत्र। इसी प्रकार ब्रह्म के ध्यान से प्रत्येक वासना पूर्ण हो सकती है। अतएव, ऋषि ने उत्तर दिया कि सब प्रकार की इच्छाएँ पूर्ण। यदि उसका एक ही फल होता, तो नाम बता देते कि अमुक लोक अथवा इच्छा को पूर्ण कर सकता है।

प्रश्न—क्या कर्म-फल इस जन्म में भी मिल सकता है ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर—नहीं मिल सकता, क्योंकि जब तक बीज गल न जावे, तब तक अंकुर नहीं आता। और जब तक पक न जावे, फल नहीं दे सकता। जब कोई कर्म किया जाता है, तो उसका बीज गलने के पश्चात् दो अंकुर होते हैं। एक अवरिष्ट, दूसरे संस्कार। और जब अवरिष्ट का अंकुर पक जावे, तब वह फल दे सकता है।

प्रश्न—यदि कर्म-फल इस जन्म में नहीं मिल सकता तो ऋषि ने क्यों कहा है कि इस जन्म में प्रत्येक काम में सफलता होती है।

उत्तर—ब्रह्म का ध्यान कर्म नहीं, किंतु उपासना का अंग है; और उपासना का फल उसी समय मिला करता है। जिस प्रकार आग के पास जाते ही हाथ जलने लगते हैं और जल के पास जाते ही शरद हो जाते हैं। गार्गी ने कर्म और उपासना के फल को पृथक्-पृथक् प्रत्यक्ष करने के अर्थ यह प्रकट किया कि इस शरीर में ही वह सफल होता है।

प्रश्न—कर्म का बीज क्या है जिसके गलने पर फल उत्पन्न करने वाला अंकुर निकलता है।

उत्तर—जिसके होने से कर्म होता है और जिसके बिना नहीं होता, क्योंकि जीव का ज्ञान तो स्वाभाविक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, परन्तु कर्म करण द्वारा कर सकता है, अतएव कर्म का बीज शरीर है।

प्रश्न—जीव को कर्म का बीज क्यों न कहा जावे, किंतु विना जीव के कर्म हो ही नहीं सकता।

उत्तर—जीव बोने वाला है, कर्म का बीज शरीर ही है।

मंत्र—स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनु भवति॥ ३। ५५॥

शब्दार्थ—स=वह ज्ञानी पुरुष। यदि=यदि। एक-मात्रन्=ओ३म् की एक मात्रा अर्थात्। अ=का। अभि-ध्यायति=मन को एकाग्र करके ध्यान करता है अर्थात् आकार ध्यान इसका मन विषयों में रहित हो जाता है। हवेदितः=सावधानता से। तर्णम्=अति शीघ्र। एव=है। जगत्याम्=जगत्। अभिसम्पद्यते=दोनों प्रकार के धन ऐश्वर्य तथा राज्यादि सामिग्री से युक्त होता है। तम्= उस ज्ञानी को। ऋचः=ऋग्वेद के अनुकूल अर्थात् गुण के ज्ञान रूप सब सामग्री। मनुष्य लोकम्=मनुष्यों के राजा। उपनयन्ति=जिस प्रकार उपनयन संस्कार से दूसरे से उत्तमता होती है अर्थात् वह वेद पढ़ने का अधि-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कारी होता है। स=वह। तत्र=इस जन्म में। तपसा=तप से। ब्रह्मचर्येण=ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदानुकूल कर्म से। श्रद्धया=श्रद्धा से। सम्पन्नः=ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करके। महिमानम्=परमात्मा की महिमा को। अनुभवति=अनुभव करता है।

अर्थ—ऋषि कहते हैं कि जब वह ओ३म् की एक मात्रा अर्थात् आकार को स्थिर चित से ध्यान करता है, तो उस उपासना का यह फल होता है कि वह मेधा बुद्धि को प्राप्त करके अति शीघ्र पृथ्वी पर मनुष्यों में विद्वान् होकर मनुष्यों पर शासन करता है। और तप और ब्रह्मचर्य से पृथक् होकर श्रद्धा से युक्त होकर परमात्मा की महिमा को ज्ञात करता है। जब तक मनुष्य परमात्मा के ध्यान में न लगे, तब तक वह संसार में राज्य करने योग्य नहीं होता।

प्रश्न—परमात्मा के ज्ञान और राज्य से क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—परमात्मा के ज्ञान के बिना मन पर अधिकार नहीं हो सकता। और जिसका मन पर अधिकार न हो, वह इन्द्रिय और शरीर पर ठीक प्रकार अधिकार नहीं रखता। जिसका शरीर पर अधिकार न हो, उसकी संतान अधिकार में नहीं रहती। और जिसकी संतान अधिकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में न हो, वह टोला पर हकूमत नहीं कर सकता; वह गांव पर किस प्रकार हकूमत कर सकता है। और जिसकी गांव में हकूमत न हो, वह प्रांत और देश पर किस प्रकार राज्य कर सकता है। अतः संसार पर राज्य करने का मूल कारण मन पर राज्य करना है। और मन पर राज्य बिना ब्रह्म-ज्ञान के हो नहीं सकती।

प्रश्न—हम तो देखते हैं कि इस समय बहुत से राजा जो ब्रह्मज्ञान से शून्य हैं, परन्तु फिर भी शासन-कार्य करते हैं, सो क्यों ?

उत्तर—निस्संदेह वह राजा कहलाते हैं, परन्तु वह राजा हैं नहीं। क्योंकि यदि वह राजा होते, तो इनको बाडीगार्ड अर्थात् रक्षक, सेना की आवश्यकता नहीं होती; राजा प्रजा का रक्षक होता है। जिसको अपने शरीर की रक्षार्थ अन्य की सहायता की आवश्यकता हो, वह सब प्रजा की रक्षा किस प्रकार कर सकता है। जो स्वयम् भय करता है, वह प्रजा को निर्भय किस प्रकार बना सकता है।

प्रश्न—मन पर काबू होने से क्या बाडीगार्ड की ज़रूरत नहीं रहती।

उत्तर—भय पाप से होता है, यदि मन वश में हो, वह पाप करेगा ही नहीं। जो पाप न करे, उसको किसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का भय हो ही नहीं सकता। क्योंकि उसने किसी को हानि ही नहीं पहुँचाई, जिससे कोई शत्रु हो। जब शत्रु ही नहीं सब प्रजा हैं, जो पुत्रवत् होती है, जो इसका होना अपने लिये निश्चित विचार करती है, फिर बाडीगार्ड की आवश्यकता ही क्या है।

मंत्र—अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम् । स सोमलोक विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ॥ ४।५६ ॥

शब्दार्थ—अथ=एक मात्रा की उपासना के पश्चात्। यदि=यदि। द्विमात्रेण=अकार, उकार दो मात्राओं से। मनसि=मन में। सम्पद्यते=परमात्मा के ध्यान को प्राप्त करता है अर्थात् ज्ञान और कर्म दोनों होते हैं। स=वह ज्ञानी पुरुष। अन्तरिक्षम्=आकाश में बसने वाले दूसरे लोकों को। यजुर्भि=यजुर्वेद विद्या अर्थात् ज्ञान के अनुकूल कर्म से। उन्नीयत=उन्नति करता है। स=वह ज्ञानी पुरुष। सोमलोकम्=चन्द्र लोक पर शासन करता है। स=वह। सोमलोके=चन्द्र लोक की हकूमत के द्वारा। विभूति= वहां के सुखों को। अनुभूयः=मालूम करके पुनरावर्त्तते= फिर लौट आता है।

अर्थ—यदि संसारिक ऐश्वर्य तथा राज्य को देने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाली उपासना के पश्चात् अकार, उकार दो मात्राओं से, मन को ज्ञान और कर्म के द्वारा परमात्मा के ध्यान में लगावे, तो वह आकाश में रहने वाले दूसरे लोकों पर भी राज्य करता है। और वह चन्द्रलोक पर शासन करता है और वहाँ के सुखों को अनुभव करके फिर पृथ्वी पर लौट आता है। तात्पर्य यह है कि संसारिक ऐश्वर्य नष्ट-कारक हैं। यदि ऋषि का आशय यह समझा जावे कि एक मात्रा की उपासना से तो इन्द्रियों का सुख और बाहिरी ज्ञान प्राप्त होता है। और मन के भीतर ज्ञान और कर्म से जब उपासना करते हैं, तो उसको मन में शांति का दर्शन होता है। जिस शांति को संसार के राजा किसी दशा में प्राप्त नहीं कर सकते हैं, इसको ब्रह्म-उपासक जन ही प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न—राजाओं को शांति क्यों प्राप्त नहीं होती?

उत्तर—संसार के राजाओं को अन्य राजाओं की उन्नति से भय, प्रजा से भय कि कहीं प्राणांत न करदें, राज-सिंहासन से न उतार दें। मौत का विचार, उन्नति की अभिलाषा इत्यादि होते हैं, जिसमें शांति नहीं हो सकती।

प्रश्न—ब्रह्म-उपासक में यह दोष क्यों नहीं होते?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर—ब्रह्म-उपासक को दूसरे की उन्नति का भय किस प्रकार हो सकता है । क्योंकि वह जानता है कि ब्रह्म की उपासना से बढ़ कर और कोई आनन्द नहीं है, जो दूसरे को प्राप्त हो । उसको तो दूसरों की हीन दशा पर दया आती है और इसको मौत का भय हो ही नहीं सकता । क्योंकि वह जानता है कि जिस मार्ग पर पहुँचने के लिये शरीर रूपी गाड़ी मिली थी, वह ब्रह्म-ज्ञान मुझे मिल गया है । जब मार्ग पर पहुँच गये, तो गाड़ी के होने से क्या लाभ ? गाड़ी से पृथक् रहना ही उत्तम है । जब तक शरीर रहे, जब चाहे चला जावे । और न वह किसी का अधिकार लेता है । निदान ब्रह्म-उपासक के पास कोई अशांति का साधन ही नहीं, जिस से उसे अशांति कष्ट दे ।

प्रश्न—इनको आवश्यकताओं के प्राप्त करने का विचार तो अवश्य होगा और उनको चिंता भी अवश्य होगी ।

उत्तर—आत्मा को किसी बाहरी वस्तु की आवश्यकता नहीं; जितनी आवश्यकता है, वह सब शरीर और मन को है । जो शरीर को किराया की गाड़ी समझता है, उसको शरीर की रक्षा की क्या आवश्यकता ? रक्षा का काम स्वामी का है । आत्मा को जिसकी आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, वह भीतर विद्यमान है; जो किसी दशा में पृथक नहीं हो सकता। जब वह पृथक् ही नहीं हो सकता, तो ज़रूरत ही क्या रही।

प्रश्न—अपने शरीर को ज़रूरत न भी हो, तो कुल के मनुष्यों की ज़रूरत का तो अवश्य ख्याल होगा।

उत्तर—जैसा अपना शरीर प्रारब्ध के आश्रय जीता है, ऐसा ही कुल के मनुष्य भी प्रारब्ध के आश्रय जीते हैं क्योंकि वह जानता है कि हम इस शरीर में अपनी इच्छा से नहीं आये; किंतु कर्मों का फल भोगने के वास्ते परमात्मा ने हमें भेजा है। अतः यह शरीर कारागार है। कारागार के बँधुओं को अपनी अथवा अन्य बँधुओं की रोटी की चिन्ता करनी अज्ञानता है। अतः महाज्ञानी पुरुष से ऐसी अज्ञानता क्योंकर हो सकती है। यह सब चिंता मूर्खों को होती है, विद्वानों को नहीं।

मंत्र—यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत, स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यंत एवं हवै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरीशयं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुरुषमीक्षते, तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ । ५७

शब्दार्थ—यः=जो ज्ञानी पुरुष । पुनः=फिर । एतत=यह उपासना । त्रिमात्रेण=तीनों मात्राओं अर्थात् ओ३म् परमात्मा के सर्वोत्तम नाम को पूर्ण ध्यान से जपता है । अनेन=इसके द्वारा । एव=है । अक्षरेण= अक्षर अर्थात् नाश रहित । परम्=महान् अति सूक्ष्म । पुरुषम्=सारे जगत् में व्यापक परमात्मा को । अभिध्या-यीत=योग द्वारा प्रत्यक्ष करके ध्यान करता है । सः=वह उपासना करने वाला । तेजसि=ज्ञान के बढ़ाने वाले । सूर्यः=वेद में । सम्पन्न=प्राप्त होकर । यथा=जैसे । पादो-दर=सांप जिसका पेट है पांव होते हैं । त्वचा=केंचुली को । विनिर्मुच्यंत=नितान्त त्याग कर देता है । हवै= इसी प्रकार उपासना करने वाला । स=वह । पाप्मना= मन के भीतर जो मल, विक्षेप और आवरण है, दोष है । विनिर्मुक्तः=छूट कर । स=वह उपासना । सामभि=साम-वेद से बताई हुई उपासना से । उन्नीयते=बड़ाई को प्राप्त करता है । ब्रह्मलोकं=परमात्मा के दर्शन को प्राप्त करता है । स=वह । एतस्मात=इस प्रत्यक्ष जगत् में । जीवघ-नात=जीवात्मा देने वाले शरीर से । परात=जो कारण रूपी सूक्ष्म प्रकृति है । परम्=इससे भी सूक्ष्म जो परमा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

त्मा है, जो एक एक परमाणु के भीतर भी विद्यमान है। पुरिशयम्=जो जगत रूप मकान में रहता है अर्थात् जगत में सर्वत्र व्यापक है। पुरुषम् जिसका नाम इस कारण से पुरुष है। ईक्षते=उसके दर्शन करता है। तद्=उसके विषय में। एतौ=यह वह। श्लोकौ=श्लोक। भवतः= प्रमाण हैं।

अर्थ—पिप्पलाद ऋषि ने कहा कि जब कोई ज्ञानी पुरुष पूर्ण ओ३म् की उपासना करता है अर्थात् ज्ञान, कर्म और उपासना के कर्म को ठीक-ठीक नियमानुकूल करता है और इस ओ३म् के द्वारा से परमात्मा का ध्यान करता है। वह पुरुष वेद मूल को समझ कर जिस प्रकार सांप अपनी केंचुल को छोड़ कर स्वतन्त्र हो जाता है। इसी प्रकार वह मन के तीन प्रकार के जो दोष हैं मल, विक्षेप और आवरण इन से छूट जाता है। वह जिस उपासना के आशय से सामवेद का प्रकाश हुआ है, इस से बड़ाई प्राप्त कर लेता है। और ब्रह्म के दर्शन से वह इस प्रत्यक्ष जगत से विचार करता हुआ, अपनी देह से सूक्ष्म और इससे सूक्ष्म कारण शरीर अर्थात् प्रकृति और इससे भी सूक्ष्म परमात्मा, जिसका यह जगत् व्याप्य है, इसको देखता है। इस विषय में यह दो श्लोक प्रमाण हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—अन्य टीकाकार तो सूर्य का अर्थ सूर्यलोक करते हैं, तुमने सूर्य का अर्थ वेद किस प्रकार किया ?

उत्तर—सूर्य दो हैं, एक प्राकृतिक सूर्य जिससे नेत्र को सहायता मिलती है, और नेत्र रूप को देखते हैं और इससे रात्रि दिवस का ज्ञान होता। दूसरा आत्मिक सूर्य जिससे ब्रह्मदिन तथा ब्रह्मरात्रि का ज्ञान होता है, वह वेद है। यहां आत्मिक विषय है, अतः यहां सूर्य का अर्थ वेद है। जो वेद-ज्ञान से परिपूर्ण होता है, वही परमात्मा को जान सकता है। जो वेद के ज्ञान से शून्य है, वह परमात्मा को नहीं जान सकता।

प्रश्न—हम बहुत से वेद के जानने वालों को ज्ञान से शून्य पाते हैं ?

उत्तर—जिसके मनमें तीन प्रकारके दोष हैं अर्थात् मल, विक्षेप, आवरण, वह वेद के शब्दों को समझता हुआ भी ब्रह्मज्ञान से शून्य रहता है। यथा प्रत्येक मनुष्य जो अपने नेत्रसे अपने ही नेत्र को देखना चाहे, उसको शीशे की आवश्यकता है। जो नेत्र के अंजन को देखना चाहे वह भी विना शीशे (दर्पण) को नहीं देख सकता। अतः दयालु परमात्मा ने प्रत्येक जीव को अपना स्वरूप जानने के लिये एक दर्पण दे रक्खा है, जिसका नाम मन है। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अंधेरी रात्रि में दर्पण के होने पर भी दृष्टि नहीं आता, इस लिये परमात्मा ने सूर्य दे दिया है, जिसका नाम वेद है। परन्तु दर्पण में तीन दोषों में से कोई दोष आ जावे, तो सूर्य की विद्यमानता में भी देख नहीं सकते। इस कारण जिस विद्वान् के मन में दोष है, वह परमात्मा के दर्शन नहीं कर सकता।

प्रश्न—मल दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—मल दोष मन के अपवित्र होने का नाम है। जिस में दूसरे को हानि पहुँचाने का विचार है। जैसा कि आज कल प्रत्येक मनुष्य ईश्वर से प्रार्थना करता है कि हे परमेश्वर ! "अक्ल का अंधा गांठ का पूरा भेज"।

प्रश्न—विक्षेप किसे कहते हैं ?

उत्तर—मन के चंचल होने का नाम विक्षेप होता है, अतः चंचलता मन का विक्षेप दोष है। एक वस्तु मिल जाती है, झट दूसरी का विचार विद्यमान ! मन की इच्छा पूर्ण ही नहीं होती।

प्रश्न—आवरण दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—आवरण दोष का नाम, मन जो अहंकार का परदा है। वह जब तक स्थित है, तब तक कोई परमात्मा को नहीं देख सकता।

प्रश्न—जब कि ब्रह्म निराकार है, तो उस को किस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकार देख सकते हैं ? जब ब्रह्म देखा नहीं जा सकता तो ऋषि ने उसको देखने का उपदेश क्यों किया ?

उत्तर—प्रत्येक वस्तु जिसका प्रत्यक्ष होता है, उसी को देखना कहा जाता है। देखनेके अर्थ इन्द्रियों से अनुभव करना है। यथा कोई कहे कि दाल में नमक अधिक है। यदि कहे कैसे जाना, तो उत्तर मिलता है कि खाकर देखी है। इसी प्रकार ब्रह्म को देखना कहा है।

प्रश्न—इन्द्रियों से जो अनुभव न हो, उसके देखनेके लिये कोई शब्द आ सकता है ? ब्रह्म तो किसी इन्द्रिय से नहीं जाना जाता, फिर उस का देखना कैसा ?

उत्तर—ब्रह्म मन से जाना जाता है और मन का सम्बन्ध दोनों प्रकार की इंद्रियों से है, इसलिये मन को उभय इंद्रिय कहा है। अतः ब्रह्म मानसिक प्रत्यक्ष होनेसे ब्रह्म को देखना कहा।

मंत्र—तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासु बाह्याभ्यन्तर मध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तास न कल्पते ज्ञः ॥ ६ । ५८ ॥

शब्दार्थ—तिस्रः = तीनही। मात्रा = अकार, उकार मकार अथवा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, अथवा ज्ञान, कर्म, उपासना। मृत्युमत्यः = ओंकार का मृत्यु को तैर कर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रयुक्ता = उपासना के समय ठीक नियम पूर्वक ओंकार का प्रयोग अर्थात् ओंकार का मन से जप करते हुए। अन्योन्यसक्ता = तीनों का ठीक सम्बन्ध स्थित करके। अनविप्रयुक्ता = जो तोड़ फोड़ कर जप न किया हो। क्रिया = क्रिया, हरकत में। बाह्याभ्यन्तर मध्यमासु = जो बाहर भीतर और मध्य में हो। सम्यक् प्रयुक्तासु = जो ठीक ठीक नियम पूर्वक की गई हो। न = नहीं। कम्पते = कांपना घबराना। ज्ञः = जो उपासना करने वाला योगी है।

अर्थ—जो ज्ञानी पुरुष ओ३म् की तीन मात्राओं अर्थात् अकार, उकार, मकार को मिला कर ठीक-ठीक उपासना करता है, जिसका कोई कर्म नियम के विरुद्ध नहीं होता। जिसकी आत्मिक क्रिया और बाह्य क्रिया और मध्यम क्रिया सब ठीक ठीक होती हैं। जिसको भय, लज्जा और सन्देह की प्रकाशक वृत्ति अर्थात पाप का विचार विद्यमान नहीं, वह योगी किसी जगत में किसी दशा में भय नहीं खाता। यदि कोई संसार में निर्भय हो सकता है, तो वह केवल योगी हो सकता है। अतिरिक्त योगी के और कोई निर्भय नहीं हो सकता। यदि राजा हो, तो अपने से बड़े राजा का भय। यदि धनी

९

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो तो तस्करादि का भय। यदि चक्रवर्त्ती राजा भी हो जावे, तो मौत का भय अवश्य रहेगा।

प्रश्न—योगी को क्यों भय नहीं होता ?

उत्तर—भय के कारण तीन होते हैं। प्रथम यह कि स्वयम् पाप करे। द्वितीय यह कि राजा अन्यायी। तृतीय, अविद्या हो। योगी पाप नहीं करता और न जिसको राजा समझता है, वह अन्यायी हो सकता है। योगी जानता है कि अतिरिक्त अपने कर्मों के कोई दुख सुख देने वाला नहीं। जब मैं पाप नहीं करता, तो मुझे दुख कौन दे सकता है। अविद्या योगी के पास नहीं जाती। जब भय के कारण न हों, तो भय किस प्रकार हो सकता है।

मन्त्र—ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते। तमोङ्कारेणैवाऽऽयतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्त मजरममृतंभयं परंचेति ॥ ७ । ८९ ॥

शब्दार्थ—ऋग्भिः=ऋग्वेद ज्ञानकांड और जाग्रत अवस्था से। एतम्=इस लोक को। यजुर्भिः=यजुर्वेद कर्मकांड और स्वप्न अवस्था से। अन्तरिक्षम्=चन्द्रादि लोकों को। सामभिः=सामवेदी उपासना कांड और सुषुप्ति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अवस्था से। यत=जो मिलता है उसको। कवयो=ज्ञानी विद्वान्। वेदयन्ते=जानते हैं। तम्=उस। ओंकारेण= ओ३म् परमात्मा के सर्वोत्तम नाम को। एव=है। आयतनेन=आश्रय से अन्वेति=प्राप्त करता है। विद्वान्= विद्वान्। यत्=जो। तत्=वह। शांतम्=इच्छा तथा क्लेश रहित। अजरम्=अजर। अमृत=अमर। अभयम्=निर्भय जो सर्वत्र सदा निर्भय हो। परम्=अति सूक्ष्म और महान्। च=और इति=यह परिणाम है।

अर्थ—पिप्पलाद ऋषि ने कहा कि ऋग्वेद अर्थात ज्ञान कांड से इस लोक को और यजुर्वेद अर्थात कर्मकांड से आकाश में निवास करनेवाले अन्य लोकों को। और सामवेद से जो कुछ प्राप्त होता है, उसे पूर्ण ज्ञानी पुरुष जिन्होंने योग और समाधि से सतविद्या को जान लिया है, वही बता सकते हैं। उस अवस्था को ओङ्कार के आश्रय से ही सर्वसाधारण मनुष्य प्राप्त करते हैं, जिसमें शांति प्राप्त होती है अर्थात फिर कोई इच्छा शेष नहीं रहती कि जिस की ओर मन जावे। न बुढ़ापे का अवसर प्राप्त होता है। मृत्यु से पृथक् रहता है और निर्भय रहता है और जो सब से महान् है, उसको प्राप्त कर लेता है॥

पञ्चम प्रश्न समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथ षष्टम् प्रश्न ।

मंत्र—अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ । भगवन् ! हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत । षोडशकलं भारद्वाज ! पुरुषं वेत्थ ? तमहं कुमारमब्रुवम् नाहमिमं वेद, यद्यहमिममवेदिषं, कथं ते नावक्ष्यामिति, समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुं, स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज । तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ॥ १ । ६० ॥

शब्दार्थ—अथ = शिव के प्रश्न के उत्तर के पश्चात् । सुकेशा भारद्वाजः = सुकेशा नामी भारद्वाज ऋषि की संतान से । ह एनम् = स्पष्ट पिप्पलाद ऋषि से । पप्रच्छ = प्रश्न किया । भगवन् = हे गुरु महाराज । हिरण्यनाभः = जिसका नाम हिरण्यनाभ है । कौसल्यः = जो कौसल गोत्र में उत्पन्न हुआ है । राजपुत्रः = राजा के लड़के ने । माम् = मेरे । उपेत्य = पास आकर । एतं = इस । प्रश्नम् = प्रश्न को । पृच्छत = पूछा । षोडशकलं = सोलह कला वाले । भारद्वाज = हे भारद्वज ऋषिकी संतान । पुरुषम् = संसार में सर्वत्र व्यापक अथवा शरीर में व्यापक का । वेत्थ = तू जानता है । तम् = उस । अहं = मैंने । कुमा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रम् = कुमार को । अब्रुवम् = कहा । न = नहीं । अहम् = मैंने । इमम् = उसको । । वेद = जाना । यदि = यदि । अहम् = मैंने । इमम् = उसका । अवेदिषम् = जाना होता । कथं = किस लिये । ते = तुझ को । न = नहीं । अव-क्ष्यामि = बताता । इति = यह । समूलो = बीज अर्थात् जड़ से । वा = है । परिशुष्यति = सूख जाता है । या = जो । अनृतम् = मिथ्या वस्तु की मूल के विरुद्ध । अभि-वदति = कहता है । तस्मात् = इस कारण से । न = नहीं । अर्हम् = शक्ति रखता । अनृतम् = झूठ को । वक्तुम् = सीमा से की । स = वह । तूष्णीं = चुपचाप । रथ-मारुह्य = रथ पर बैठ कर । प्रवव्राज = वहां से चला गया । ते = इसको । त्वा = आप से । पृच्छामि = पूछता हूँ । क्व = कहां । असौ = वह । पुरुष = पुरुष है । इति = यह ।

अर्थ—शिव के प्रश्न के उत्तर के पश्चात् भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न हुआ सुकेशा नामी ऋषि ने पिप्पलाद ऋषि से प्रश्न किया कि हे गुरु ! एक दिन हिरण्यनाभि कोसल देश के राजपुत्र ने आकर मेरे पास आकर प्रश्न किया कि हे भारद्वाज ! तू इस १६ कला वाले पुरुष को जानता है ? मैंने उस राजकुमार से कहा हे राजकुमार ! मैं उस पुरुष को नहीं जानता यदि मैं जानता, तो कोई कारण न था

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कि मैं तुमको न बताता । वह मनुष्य जो घटना के विरुद्ध कहता अर्थात् मिथ्या बोलता है, वह जड़ मूल से नष्ट हो जाता है। इस कारण मैं मिथ्या बोलने की शक्ति नहीं रखता। मेरी इस बात को सुन कर वह रथ पर सवार हो चला गया। अतः मैं आप से वही प्रश्न करता हूँ कि वह पुरुष षोड़श कला वाला कौनसा है ?

मंत्र—तस्मै स होवाच । इहैवान्तः शरीरे सोम्य ! स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीति ॥ २।६१ ॥

शब्दार्थ—तस्मै = इस सुकेशा के प्रश्न के उत्तर में। सहोवाच = उस पिप्पलाद ऋषि ने कहा । इह = यहां । एव = है। अन्तः शरीर = शरीर के भीतर । सोम्य = हे प्रिय शिष्य। स = वह। पुरुष = पुरुष अर्थात् जीवात्मा है। यस्मिन् = जिसके भीतर। एता = यह । षोड़शकला = १६ कलाएँ । प्रभवन्ति = उत्पन्न होती हैं । इति = यह परिणाम है।

अर्थ—पिप्पलाद ऋषि ने सुकेशा के प्रश्न के उत्तर में कहा हे प्रिय शिष्य ! वह पुरुष कहीं दूर नहीं रहता, जिसकी खोज में किसी दूसरे स्थान पर जाने की आवश्यकता हो। किन्तु वह इस शरीर के भीतर है, जिसके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भीतर यह षोड़श कलाएँ उत्पन्न होती हैं।

प्रश्न—यहां पुरुष से जीवात्मा का अर्थ अथवा ब्रह्म का ? क्योंकि पुरुष शब्द का अर्थ जीव ब्रह्म दोनों हो सकते हैं।

उत्तर—यहां पुरुष से तात्पर्य जीवात्मा है, क्योंकि अगली श्रुति इसकी युक्ति है। परन्तु चौथी श्रुति परमात्मा की महिमा का वर्णन करती है, अतः जीवात्मा परमात्मा दोनों शरीर के भीतर रहते हैं। एक षोड़शकलाओं को उत्पन्न करता है। एक षोड़शकलाओं से काम लेता है। इसलिये षोड़शकला वाले दोनों हो सकते हैं।

प्रश्न—श्रुति में पुरुष शब्द एक वचन है, इसलिये एक ही अर्थ ले सकते हैं; दो नहीं।

उत्तर—एक के देखने से दोनों का एक साथ दर्शन होता है। यथा नेत्र और नेत्र का अंजन, दर्पण सामने आते ही एक साथ देखे जाते हैं; इसलिये एक ही साधन दोनों के देखने के वास्ते हैं। अतः श्रुति ने एक वचन दिया है, परन्तु तात्पर्य दोनों का विदित होता है।

मंत्र—स ईक्षाञ्चक्रे कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि। कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामि ॥ ३ । ६२ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—स = इस जीवात्मा ने । इक्षांचक्रे = विचारा । कस्मिन्न = किस के निकलने में । अहम् = मैं । उत्क्रान्त = निकलने वाला । उत्क्रान्तो = निकलने से । भविष्यामि = होऊँगा । कस्मिन् = किसके । वा = अथवा । प्रतिष्ठिते = ठहरने में । प्रतिष्ठास्यामि = स्थित रहूँगा । इति = यह ।

अर्थ—जीवात्मा ने विचार किया कि इस शरीर से किसके निकलने में मुझे शरीर को छोड़ देना होगा । अर्थात् शरीर में कौन सी वस्तु है, जिससे मनुष्य जीवित रहता है; और किसके निकलने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है । यदि नेत्र निकल जावें, तो काना हो जाता है, परन्तु जीवित रहता है । यदि श्रवण पृथक् हो जावें, तो बहरा हो जावेगा, परन्तु जीवित रहेगा । इसी प्रकार प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के पृथक् हो जाने से शरीर में दोष तो आ जाता है, परन्तु मृत्यु नहीं होती । किंतु जिस समय प्राण निकल जावें, उस समय जीवात्मा शरीर में नहीं रह सकता । अतः प्राण के न होने से मृत्यु हो जाती है ।

प्रश्न—शिर के कटने और प्राण के निकलने से मृत्यु अवश्य हो जाती है । किसी और इन्द्रिय अथवा अङ्ग के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पृथक् होने से नहीं। इसका क्या कारण है ?

उत्तर—शिर में ज्ञान इंद्रियां हैं, जिससे जीव को नैमित्तिक ज्ञान प्राप्त होता है। और प्राणों में क्रिया होती है, जिससे जीवात्मा के प्रयत्न को सहायता मिलती है। ज्ञान और प्रयत्न ही जीवात्मा के स्वाभाविक गुण हैं। अतः जीव के गुणों को सहायता देने वाले यंत्र नहीं रहते तो जीवात्मा शरीर में किस हेतु रहे। शिर के न होने से ज्ञान और प्राण के न होने से प्रयत्न निष्फल हो जाता है।

मंत्र—स प्राणमसृजत् प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योति रापः पृथिवीन्द्रियम् मनः। अन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोका लोकेषु नाम च॥ ४। ६३॥

शब्दार्थ—स=वह विषयों से पृथक् परमेश्वर ने। प्राणम्=प्राण को। असृजत्=उत्पन्न किया। प्राणात्=प्राणों से। श्रद्धाम्=श्रद्धा को उत्पन्न किया। खम्=आकाश। वायु=वायु को। ज्योति=अग्नि को। आपः=जल को। पृथिवी=पृथिवी को। इन्द्रियम्=इन्द्रियों को। मनः=मन को। अन्नम्=अन्न को। अन्नात्=अन्न से। वीर्यम्=वीर्य को। तपः=तप। मंत्रा=विचार से। कर्म=कर्म अर्थात पाप पुण्य। लोका=शरीर अथवा मनुष्य पशु आदि। लोकेषु=स्थूल शरीर में। च=और। नाम=

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संज्ञा। च = इत्यादि।

अर्थ—सर्वत्र व्यापक परमात्मा ने सब से पूर्व प्राण क्रिया देने के लिये उत्पन्न किये। क्योंकि जब तक कोई क्रिया करने वाला न हो, कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती। उस प्राण से श्रद्धा उत्पन्न हुई, श्रद्धा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश के पश्चात वायु इसके पश्चात् अग्नि इसके पश्चात् जल, फिर पृथिवी। जब यह पांचों भूत उत्पन्न हो गये तो उनके गुणों को अनुभव करने और काम में लाने वाली इंन्द्रियां और इंद्रियों को ठीक नियम में रखने के लिये मन और मन को दृढ़ रखने और इन्द्रियों को जीवित रखने के हेतु अन्न उत्पन्न किया। और अन्न से वीर्य और वीर्य से तप अर्थात पुरुषार्थ और उससे विचार और विचार से कर्म योनि अर्थात शरीर इससे विविध प्रकार की योनियों की तकसीम अर्थात नाम उत्पन्न किये।

प्रश्न—एक उपनिषद् में तो आत्मा से आकाश की उत्पत्ति लिखी और यहां प्रथम प्राण और श्रद्धा दो लिख दिये। इन दो में से सत्य कौन सा है?

उत्तर—परमात्मा के ईक्षण अर्थात् ज्ञानानुकूल क्रिया से आकाशादि उत्पन्न होते हैं। इस कारण परमात्मा के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ईक्षण का नाम प्राण और श्रद्धा है। क्रिया का नाम प्राण और ज्ञान का नाम श्रद्धा है। अतः दोनों स्थान पर एक ही आशय है, विरोध नहीं है।

प्रश्न—उस स्थान पर तो लिखा है कि आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ। यह कहीं नहीं लिखा कि आत्मा के ईक्षण से आकाश उत्पन्न हुआ।

उत्तर—जैसे कहते हैं बाप से बेटा उत्पन्न हुआ, क्या बेटा बाप की कृपा और ज्ञान से उत्पन्न नहीं होता, परन्तु कहा यही जाता है कि बाप से बेटा उत्पन्न हुआ।

प्रश्न—षोड़श कला कौन सी हैं।

उत्तर—पांच प्राण, दश इन्द्रियां और एक मन; इन को उत्पन्न करने वाला परमात्मा, धारण करने वाला जीवात्मा है।

प्रश्न—परमात्मा को क्या प्रयोजन था जो व्यथ जीवात्मा को यह १६ कला देकर झगड़े में डाला।

उत्तर—इसकी दया और न्याय स्वभाव है। जीव की निर्बलता पर दया करके जगत के उत्पन्न का कारण हुआ, उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं।

मंत्र—स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छान्ति, ।भिद्येते तासां नाम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपे, समुद्र इत्येवं प्रोच्यते । एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति, भिद्येते चाऽऽसां नामरूपे, पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति, तदेश श्लोकः ॥ ५ । ६४ ॥

शब्दार्थ—स=इस पिप्पलाद ऋषि ने कहा । यथा=जैसे । इमा=यह । नद्य=नदी । स्यन्दमानः=बहते हुए । समुद्रायणः=जिनका समुद्र घर है । समुद्रय=समुद्र को । प्राप्य=प्राप्त होकर । अस्तम् गच्छन्ति=दृष्टि से गुप्त हो जाते हैं । भिद्येते=छूट जाता है । तासाम्=इन नदियों का । नाम रूप=नाम और रूप । समुद्र=समुद्र है । इति=यह । एव=इस प्रकार । प्रोच्यते=कहा जाता है । एवम् इस प्रकार से । एव=है । अस्य=इसके । परिद्रष्टुः=इन सब को देखने वाले को । इमा=यह । षोड़श कला=यह षोडश कला । पुरुषायणा=जिनका पुरुष है घर । पुरुषम=पुरुष को । प्राप्यः=प्राप्त हो कर । अस्त गच्छति=गुप्त हो जाती है । भिदयेते=छूट जाता है । तासाम्=उनसे । नाम रूपे=नाम और रूप । पुरुषः=पुरुष है । इति=यह । एवम्=इस प्रकार यह । प्रोच्यते=कहा जाता है । स=वह । एव=यह । अकलः=कलाओं से पृथक । अमृतः=

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अमर। भवति = होता है । तत् = इस विषय में यह श्लोक प्रमाण है।

अर्थ—पिप्पलाद ऋषि ने कहा कि जिस प्रकार यह जो नदियां बह रही हैं, जब तक अपने मुख्य स्थान समुद्र तक नहीं पहुँचती, तब तो इनका नाम और रूप पृथक्-पृथक् जान पड़ता है। किसी को सतलुज कहते हैं, किसी को व्यास, किसी की धार बहुत बड़ी है, किसी की छोटी, कोई वेग से गति करती है, कोई धीरे किसी के किनारे बहुत ऊँचे हैं, किसी के कम किसी का पानी खारा, किसी का मीठा। परन्तु जिस समय वह सागर में जा मिलता है, तो इनमें जो नाम रूप का अन्तर था वह गुप्त हो जाता है। उस समय अतिरिक्त सागर के और किसी नाम से इनका उच्चारण नहीं करते। प्रथम सब नाम गुप्त हो जाते हैं अन्तर भेद भी मिट जाता है। इसी प्रकार यह षोड़श कला अर्थात् प्राण इन्द्रियां और मन इत्यादि जो हैं, इन सब का नियत स्थान पुरुष है। जब तक यह इन्द्रियां उस पुरुष को प्राप्त नहीं करतीं, तब तक इनके नाम, काम और रूप पृथक्-पृथक् दृष्टि पड़ते हैं। आंख का कार्य दिखना है। आंख की आकृति नाक और कान से पृथक् है इसी प्रकार और की दशा है। परन्तु जिस समय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समाधि की अवस्था में अपने विषयों को त्याग कर पुरुष को प्राप्त हो जाती हैं तब इनका नाम, रूप और काम सब छूट कर पुरुष ही रह जाता है। वह पुरुष कला अर्थात् इन्द्रिय आदि से अपनी जाति में पृथक् है। यह सब कला पुरुष का न तो स्वरूप ही है, न इसकी जाति से इनका सम्बन्ध है और वह पुरुष मृत्यु से रहित है। क्योंकि मृत्यु उसकी होती है, जिसका जन्म हो न तो पुरुष का जन्म है, न मृत्यु, यह सब शरीर के धर्म हैं। शरीर ही मरता, शरीर ही जन्मता, शरीर से ही यह कला निवास करती है। जब जीवात्मा अपने से बाहर की ओर देखता है, तब अपने को अविद्या से कला-धारी स्वीकार करता है, जिससे मृत्यु आदि के भय में लिप्त रहता है। जब भीतर की ओर देखता है, तब अविद्या नाश होजाती है और वह कला के अहङ्कार से मुक्त हो जाता है। इस विषय में उपरोक्त श्लोक प्रमाण है।

मन्त्र—अराइव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः। तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥ ६ । ६८ ॥

शब्दार्थ—अराइव रथनाभौ=जिस प्रकार गाड़ी के पहिया की नाभि अर्थात पुठी में आरे लगे होते हैं। कला=

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसी प्रकार कला। यस्मिन्न=जिस पुरुष में। प्रतिष्ठिता=स्थापन हैं। तम=उसको। विद्यम=जो जानते हैं। पुरुषम्=जो सर्वत्र व्यापक है। वेद=जानो। यथा=जिस से। मा=मत। नः=हम को। मृत्युः=मृत्यु की। परिव्यथा=महा कष्ट हो। इति=यह।

अर्थ—पिप्पलाद ऋषि कहते हैं—हे ऋषियो! जिस प्रकार रथ के पहिये की पुठी में आरे लगे होते हैं, इसी प्रकार जिस पुरुष में कला विद्यमान हैं, जिसके बिना कोई कला रह नहीं सकती। इस जानने योग्य परमात्मा को जानो, जिससे मृत्यु के भय से मुक्त होते हैं।

प्रश्न—क्या इस संसार में ब्रह्म जानने योग्य है और कोई वस्तु नहीं।

उत्तर—निस्संदेह विद्वानों के विचार में तो केवल ब्रह्म जानने योग्य है। क्योंकि अन्य वस्तुओं के जानने से मृत्यु के कष्ट से बच नहीं सकता। यद्यपि मनुष्य ने प्राकृतिक ज्ञान के द्वारा तोप, बंदूक डायनामेन्ट के गोले आदि बहुत से यन्त्र बना लिये, जिससे दूसरों को मार सकें। परन्तु ऐसा कोई यन्त्र नहीं बना, जिससे मनुष्य मृत्यु के भय से बच सके। यूरुप अमेरिका जो प्राकृतिक विज्ञान में विशेष उन्नति कर चुके हैं। वहां पर भी कोई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी महाराजा ऐसा नहीं जिसको मृत्यु का भय न हो। सब के साथ बाडीगार्ड की विद्यमानता बताई है कि वहाँ के राजा मृत्यु के भय से रहित नहीं। एडवर्ड सप्तम जैसे सब से बड़े राजा की मृत्यु प्रकट करती है कि अब तक कोई ऐसा यन्त्र नहीं बना, जिसके द्वारा मृत्यु के भय से बच सकें। अतः जिस प्राकृतिक विज्ञान से मारना तो सरल हो जावे, परन्तु बचाने का कोई यन्त्र न मिले। तो यह ज्ञान अविद्या से शरीर को आत्मा मानने वालों के विचार में तो जानने योग्य हो सकता है। परन्तु जो मनुष्य ज्ञानी हैं, वह केवल ब्रह्म को जानना चाहते हैं, जिससे मृत्यु का दुःख कोई वस्तु ही नहीं रहता, अर्थात जानने योग्य ब्रह्म ही है। क्योंकि इसके ज्ञान से सब का ज्ञान होना सम्भव है और दूसरे किसी के ज्ञान से उसका ज्ञान हो नहीं सकता। अतः एक ब्रह्म ही जानने योग्य है।

मंत्र—तान् होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म। वेद नातः परमस्तीति ॥ ७। ६६ ॥

शब्दार्थ—तान्=उन सुकेशादि अपने शिष्यों को अंतिम परिणाम बताने को। होवाच=पिप्पलाद ऋषि ने कहा। एतावद्=इसी क़दर। एव=है। अहम्=मैं। ब्रह्म=परमात्मा को। वेद=जानता हूं। न=नहीं। अतः=इससे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परम=अधिक । अस्ति=है । इति=यह ।

अर्थ—पिप्पलाद ऋषि ने सुकेशादि अपने शिष्यों से परिणाम निकाल कर कहा कि इतना ब्रह्मज्ञान है कि वह सब से सूक्ष्म, सब से महान् अर्थात् गुण में सब से उच्च है । इस से अधिक और कुछ मैं ब्रह्मज्ञान से सम्बंध में नहीं जानता । और इस विचार से कि और कोई दूसरा जानता हो, तो ब्रह्मज्ञान इससे पृथक् भी होगा । कहा कि इससे परे और कुछ नहीं ।

प्रश्न—क्या पिप्पलाद ऋषि के ऐसे कहने से ऐसा परिणाम नहीं निकलता कि उन्होंने ब्रह्मज्ञान की सीमा प्राप्त कर ली, जिसको कोई प्राप्त न कर सके ।

उत्तर—जितना जीवात्मा जान सकता है, वह यही है कि ब्रह्मज्ञान अनन्त है, उस ब्रह्म से परे कुछ नहीं । जब इस से परे सब को न होना बता दिया, अपने ज्ञान के न होने का भी इससे प्रकाश हो गया; जिससे ब्रह्म का अनन्त होना ही स्थित रहा ।

मंत्र—ते तमर्चयन्तस्त्वं हिनः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति । नमः परम ऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः ॥ ८ । ६७ ॥

शब्दार्थ—ते=वह सुकेशादि ऋषि । तम्=उस पिप्प-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लाद ऋषि की। अर्चन्तः=पूजा करके। त्वम्=तू है। नः=हमारा। पिता=गुरु है, तुही रक्षक है। यो=जो। अस्माकं=हमको। अविद्याया=अविद्या से। परम=परे। पारम्=पार किनारे। तारयास=तैरा कर ले जायगा। इति=यह। नमः=संस्कार पूजा है। परम ऋषिभ्यः= पूर्ण वेद के जानने वाले को। दोबारा पुस्तक समाप्त होने का चिन्ह है।

अर्थ—सुकेशादि शिष्यों ने पिप्पलाद ऋषि की पूजा करके कहा कि—महाराज! आप ही हमारे गुरु हैं, जो हमको अविद्या के सागर से पार करने की सामर्थ्य रखते हैं। यद्यपि संस्कार सागर बहुत ही बड़ा है और अविद्या ने सम्पूर्ण जगत् को घेर रक्खा है, परंतु आप की कृपा से हमको इस अविद्या से कोई भय नहीं रहा। इस लिये हे वेदों के तत्व के पूर्ण ज्ञानी! तुझको बार-बार हमारा नमस्कार है। अन्त में पुनर्बार लिखने से ज्ञात हुआ कि यह उपनिषद् समाप्त हो गई।

हिंदी अनुवाद प्रश्नोपनिषद् का समाप्त हुआ।

ओ३म् शांतिः शांतिः शांतिः।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE